दो बाँके

श्री भगवतीचरण वर्मा

ग्रन्थ संख्या	८९
चतुर्थ संस्करण	सं० २०२१
मूल्य	२.५०
प्रकाशक तथा विक्रेता	भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
मुद्रक	बी. पी. ठाकुर लीडर प्रेस, इलाहाबाद

'प्रेजेन्ट्स' कहानीवाली श्रीमती शशिबाला देवी को इन कहानियों
के लेखक की एक सौ चौदहवीं भेंट.

दो शब्द

चार जवान, बाँके-तिरछे, पाँचों कपड़े पहने और पाँचों हथियारों से लैस, अरबी घोड़ों पर सवार एक गाँव से गुजर रहे थे। उनके पीछे-पीछे चले जा रहे थे एक बड़े मियाँ, दुबले-पतले, बने-ठने, एक गधे पर सवार। गाँववाले सड़क पर पर इकट्ठा हुए, उन सवारों को देखने के लिए। कौतूहल बढ़ा, और किसी गाँववाले ने पूछ ही तो दिया—ये सवार कहाँ जा रहे हैं ? —इस सवाल का पूछा जाना था कि बड़े मियाँ का तपाक के साथ जवाब देना था, —हम पाँचों सवार दिल्ली जा रहे हैं।

लोग मुझे पाँचवाँ सवार भले ही समझ लें, पर मैं तो कहूँगा, और जोर देकर कहूँगा कि मैं भी कलाकार हूँ। इन पन्द्रह कहानियों को आप पढ़ें, पढ़ने लायक हैं; और मैं आपसे कहता हूँ कि आजकल पढ़ी जाने लायक चीजें प्रायः लिखी ही नहीं जातीं।

अच्छा ! आप से कुछ तथ्य की बातें भी कह दूँ। 'क्या लिखा जाता है और क्यों लिखा जाता है'। किसी भी कलाकार की कृति को पढ़ने के समय ऐसे प्रश्नों को उठाना कलाकार के साथ ही नहीं, वरन् कला के साथ अन्याय करना है। आप लोगों को देखना चाहिए, 'किस तरह लिखा जाता है ?' और यहीं कलाकार की सफलता है।

एक बात और भी कहनी ही पड़ गई। मेरे कुछ मित्रों ने मेरी इन कहानियों में कहीं-कहीं 'अश्लीलता' और कहीं-कहीं 'नैतिकता का अभाव' नाम की दो चीजों को ढूँढ़ निकालने का कष्ट उठाया है। मेरे उन मित्रों का अनुकरण आप लोगों में भी कुछ सज्जन कर सकते हैं। इस विषय में मुझे केवल इतना कहना है कि संसार में 'अश्लीलता' नाम की कोई चीज है भी, इस पर मुझे शक है। रही नैतिकता की

बात, वहाँ मनुष्य का अपना निजी दृष्टिकोण है। अगर आपको अधिकार है कि आप मुझे गलती पर समझें, तो मुझे भी यह अधिकार प्राप्त है कि मैं आपको गलती पर समझूँ।

१६, पार्क रोड
इलाहाबाद २६-१२-३५

भगवतीचरण वर्मा

विषय-सूची

कहानियाँ		पृष्ठ
दो पहलू	...	९
मेज़ की तसवीर	...	१३
विवशता	...	१७
कायरता	...	२४
काश कि मैं कह सकता	...	२९
रेल में	...	३९
कुँवर साहब का कुत्ता	...	४६
तिजारत का नया तरीका	...	५४
अनशन	...	६५
लाला तिकड़मीलाल	...	७६
नाज़िर मुंशी	...	८५
पराजय अथवा मृत्यु	...	९५
दो बांके	...	१०६

दो पहलू

रामेश्वर ने 'लीडर' खोला और रिज़ल्ट-शीट पर उसने अपनी नजर दौड़ाई। एम० ए० के उत्तीर्ण विद्यार्थियों में उसका नाम छपा था और उसके नाम के आगे लिखा था—फ़र्स्ट डिवीजन !

अपने अन्य साथियों का परीक्षा-फल देखकर उसने लीडर बन्द कर दिया, फिर उसने एक क्षण के लिए मुस्कराते हुए अपने चारों ओर देखा।

और उसने देखा कि सारी प्रकृति उसकी प्रसन्नता से हँस रही है। चिड़ियाँ चहक रही थीं और मोगरा महक रहा था। सुबह की ठण्डी हवा अपनी मस्ती के साथ सौरभ से अठखेलियाँ कर रही थी और आम के बौरों पर बौराई हुई कोयल पञ्चम की अलाप भरने में बेसुध थी।

अपनी उमंग की मादकता में चकित और पुलकित रामेश्वर एक अजीब तन्मयता के साथ यह सब देख रहा था। और फिर उसका हाथ अपने आप बिना उसके जाने हुए उसकी जेब में चला गया। उसने शान्ता का पत्र निकाला, और पिछले दिन कई बार पढ़ चुकने के बाद भी उसने उस पत्र को फिर पढ़ा। शान्ता ने उसे मसूरी बुलाया था—और भी उसने बहुत-कुछ लिखा था और उससे भी अधिक उसने बिना लिखा छोड़ दिया था। मोती के-से सुन्दर और छोटे-छोटे अक्षर तथा लेटर पेपर से निकलती हुई भीनी-भीनी खुशबू !—और फिर उसके साथ शान्ता का पवित्र प्रेम ! शान्ता अपूर्व सुन्दरी थी। यूनीवर्सिटी के सब लड़के रस के लोभी भौंरों की भाँति शान्ता के पीछे मँडराया करते थे। पर रामेश्वर उन सब लड़कों से अधिक भाग्यवान था, क्योंकि शान्ता उससे प्रेम करती थी। पत्र को

आदि से अन्त तक उसने एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और तीन बार पढ़ा, फिर उसने पत्र का चुम्बन करके अपनी जेब में रख लिया।

इसके बाद उसने अपने पिता का पत्र खोला। उसके पिता ने उसे विलायत जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा में सम्मिलित होने की सलाह दी थी।

रामेश्वर उठ खड़ा हुआ। भैरवी का स्वर भरते हुए वह अपने बँगले से निकल पड़ा—घूमने के लिए!

बाईस वर्ष का लम्बा-सा सुन्दर नवयुवक रामेश्वर अपनी सफलता पर प्रसन्न धीरे-धीरे चला जा रहा था। उसके शरीर में बल था, उसके हृदय में उमंग थी, उसकी धमनियों में गरम रक्त प्रवाहित हो रहा था, उसके विचारों में स्फूर्ति थी। उसका मस्तक ऊँचा था, अस्तित्व की सार्थकता का उसमें पूर्ण प्रतिबिम्ब था।

उसके कानों में एकाएक कोलाहल का एक कठिन प्रहार पड़ा जिसने उसकी तन्मयता को भंग कर दिया। वह चौंक उठा। सामने आजादी के दीवानों का एक जलूस चला आ रहा था। वह खड़ा हो गया—जलूस धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ रहा था।

उसने पीछे देखा, और वहाँ उसने देखा एक दूसरा जलूस शासन को कायम रखने वालों का। पुलिस वालों के हाथ में लाठियाँ थीं और कन्धे पर बन्दूकें। रामेश्वर ने न जाने क्यों अपने अन्तर में पीड़ा से भरी हुई एक प्रकार की हलचल का अनुभव किया।

दोनों ओर से दोनों जलूस एक दूसरे की तरफ बढ़ रहे थे। और बीच में रामेश्वर खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था।

और फिर दोनों दल अचानक रुक गये, ठीक वहाँ जहाँ रामेश्वर खड़ा था। जलूस वालों में और पुलिस वालों में कुछ कहा-सुनी हुई। रामेश्वर ठीक देख नहीं सका कि क्या हुआ, पर उसे यह ऑर्डर स्पष्ट सुनाई पड़ा—"जलूस गैर कानूनी करार दिया जाता है। अगर दो मिनट के अन्दर यह भंग नहीं हो जाता तो बल-प्रयोग से भंग कर दिया जायगा।" और दूसरी

ओर से नारे लगे, "भारत माता की जय, महात्मा गांधी की जय, स्वतन्त्रता की जय !"

लाठियाँ चलीं और उसके बाद गोलियाँ चलीं। और उन नवयुवकों में जो छाती खोल कर गोलियाँ खाने को आगे बढ़ आये थे रामेश्वर भी था। रामेश्वर की छाती में गोली लगी, "भारत माता की जय !" कह कर वह जमीन पर गिर पड़ा।

और मैं पूछ रहा हूँ––कल्पना के किस स्वर्ग को पाने के लिए वह नवयुवक अपने जीवन के स्वर्ग को ठुकरा कर चला गया ?

२

चिथड़ों से ढँके हुए और मक्खियों से घिरे हुए उस बूढ़े भिखारी ने बड़े करुण स्वर में पुकारा "एक मुट्ठी अन्न !"

तीर्थराज प्रयाग में माघमेला के अवसर पर संगम के किनारे वह बुड्ढा भीख माँग रहा था। उसकी उम्र साठ के ऊपर रही होगी, उसके बाल सफ़ेद थे और उसका मुख विकृत तथा कुरूप। उसकी आँखें पथराई हुई सी तथा भावना से शून्य और उसका स्वर रूखा, कर्कश और काँपता हुआ। उसके हाथ पैर की उँगलियाँ कुष्ठ से गल कर गिर गई थीं और उसके शरीर से एक ऐसी भयानक दुर्गन्ध निकल रही थी जो उसके पास से निकलने वाले को अपनी नाक दबाने को विवश करती थी।

एक औरत ने उसके सामने अपनी जूटन की पूड़ी का एक टुकड़ा फेंका, और उसके सामने उस टुकड़े के गिरते ही उस टुकड़े का अधिकारी एक कुत्ता झपटा (पूड़ी के उस टुकड़े को उस भिखारी ने और उस कुत्ते ने साथ-साथ पकड़ा, दो सेकेण्ड तक नर में और पशु में छीना-झपटी हुई और अन्त में कुत्ते पर भिखारी ने एक डंडे के सहारे विजय पाई।)

माघमेला की उस भीड़ में किसी-किसी ने उस भिखारी की उपस्थिति पर आपत्ति भी की; पर वह मेला था, पुण्य का स्थान था और पुण्य कमाने का छोटे-बड़े सब को समानाधिकार प्राप्त है। हाँ, मनुष्य स्वयम् अपने को उस भिखारी से दूर रख सकता था।

और फिर वहाँ पर उस भिखारी से कहीं अधिक भाग्यवान, वैभव से युक्त तथा गद्दीदार भाई-वन्द भिखारियों का एक शानदार जलूस निकला। तरह-तरह के बाजे बज रहे थे, सोने और चाँदी के सामान साथ में थे। हाथियों पर मखमल की झूलें लटक रही थीं, और चाँदी के हौदों पर भिखारी लोग बैठे हुए राजाओं को चुनौती दे रहे थे। घोड़े सोने चाँदी के गहनों से लदे थे, और ऊँटों पर भिखारी लोग अपना निशान फहरा रहे थे।

कर्ज़ काढ़ कर और पेट काट कर एकत्रित रुपयों का उपयोग करके पुण्य कमाने के लिए आये हुए भक्तों का समूह उन भिखारियों के दर्शन करने के कारण स्वर्ग का अधिकारी बनने के लिए उमड़ा पड़ रहा था। उस भीड़ में बूढ़े थे, जवान थे, स्त्रियाँ थीं, बच्चे थे।

उसी समय एक दुर्घटना हो गई। महन्त जी का हाथी उस मेले की भीड़ में अचानक बिगड़ खड़ा हुआ। एकत्रित जन-समूह अपने-अपने प्राण लेकर भागा।

और उस भागती हुई भीड़ में स्त्रियों और बच्चों को धक्का देकर भागता हुआ वह बुड्ढा और कोढ़ी भिखारी अपने प्राण बचाने के लिए सबसे आगे था।

और मैं पूछ रहा हूँ—कल्पना के किस नरक से बचने के लिए वह बुड्ढा और कोढ़ी भिखारी अपने जीवन के नरक से बुरी तरह चिपटा हुआ था?

मेज़ की तसवीर

रामनारायण ने लिखना आरम्भ किया जीवन एक पहेली है और मृत्यु उस पहेली का उत्तर है — और उसकी दृष्टि सामने मेज़ पर रक्खे हुए फोटोग्राफ़ पर पड़ी। उसका हाथ रुक गया, उसकी विचार-धारा एकाएक विश्रृंखल हो गई। उसने अपना फाउन्टेनपेन रख दिया।

वह फोटोग्राफ़ एक स्त्री का था जिससे कभी रामनारायण ने प्रेम किया था, और जिसने कभी रामनारायण से प्रेम किया था। उसका नाम था मनोरमा और वह रामनारायण के साथ पढ़ती थी। रामनारायण के सामने उसका विद्यार्थी-जीवन आ गया--हाँ, वह कितना अच्छा जीवन था। मनोरमा! यह मनोरमा मेरे साथ पढ़ती थी और--और मैं उससे प्रेम करता था। फिर क्या हुआ--हाँ, मनोरमा से मैंने उसका चित्र माँगा, चित्र लेकर चाँदी के चौखटे में मैंने मढ़वाया, यही तो उसका चित्र है न--वही बड़ी-बड़ी आँखें—वही मुख पर बच्चों का-सा भोलापन, वही उसकी तन्मयता! रामनारायण मुसकराया--उठकर उसने चित्र को उठा लिया, अपनी आँखों के अधिक नजदीक लाकर उसने उस चित्र को अच्छी तरह से देखा--'हाँ, मनोरमा से मैं प्रेम करता था, और वह भी मुझसे प्रेम करती थी। पर हाँ, याद आया, वह मुझसे विवाह नहीं कर सकती थी--विवाह की कोई आवश्यकता भी तो नहीं थी--क्यों?' रामनारायण चित्र की ओर देखते हुए भी न देख रहा था--वह केवल सोच रहा था--'हाँ, वह विवाह पर विश्वास नहीं करती थी और मैं भी विवाह पर विश्वास नहीं करता था। बिना जीवन की कठिनाइयाँ झेले हुए जीवन का आनन्द लेने में हम दोनों विश्वास करते थे--' रामनारायणमुस कराया 'ठीक!

कितना सुन्दर विचार था क्योंकि आज मैं विवाहित हूँ, मेरे पास धन नहीं है और मेरी पत्नी है, बच्चे हैं—सब-के-सब कितने निराश्रय हैं, कितने निरीह हैं !' रामनारायण की मुसकराहट गायब हो गई, 'ठीक है—पर मनोरमा ने तो विवाह कर लिया ! वह अपनी बात पर नहीं जमी रह सकी, और वह सुखी है। उसका पति लखपती आदमी है, उसके पास मोटर है, बँगला है। वह आज अगाध वैभव की स्वामिनी है, और मैं—मैं भिखारी से भी गया बीता हूँ। पर मनोरमा ने विवाह क्यों किया ? मुझसे उसने कहा था कि वह विवाह न करेगी। फिर क्या उसने मुझे धोखा दिया था ?' रामनारायण ने तसवीर उसी स्थान पर रख दी जहाँ वह रक्खी हुई थी, 'मनोरमा का विवाह पहले हुआ था, मुझे याद है। उसने मुझे निमन्त्रण भी तो दिया था, और मैं—मैं उसके विवाह में नहीं गया। मुझे उस पर क्रोध था, उसने मेरे साथ विश्वासघात किया था। उसे विवाह करना ही न चाहिये था, और अगर उसे विवाह करना था तो वह मेरे साथ विवाह करती। उसने मुझे धोखा दिया और उसने अपने पति को धोखा दिया। उसका पति हम दोनों के सम्बन्ध भला कैसे जान सका होगा—उफ़ मनोरमा का वह काम कितना घृणित था, कितना दूषित था।'

रामनारायण ने फाउन्टेनपेन उठा लिया पर वह अपनी विचारधारा को तोड़ न सका, 'पर इसमें उसका क्या दोष ? कमजोरियाँ किसमें नहीं होतीं ? उसने अच्छा ही किया जो उसने मेरे साथ विवाह नहीं किया। मेरे साथ वह कितनी दुखी होती। मेरी स्त्री ही कौन सुखी है। और फिर मैं ही कौन अपनी बात पर अटल रहा ? मैं भी तो विवाह के विरुद्ध था न—'

एकाएक रामनारायण के हृदय में यह विचार आया, 'पर मैंने मनोरमा की तसवीर अभी तक क्यों रख छोड़ी ? मनोरमा मेरी है कौन ? वह तो एक विगत सपना है—इससे अधिक कुछ नहीं। जब से हम दोनों अलग हुए तब से फिर एक बार मिले तक भी नहीं। फिर इसकी तसवीर मेरे मेज़ पर क्यों है ? और मेरी स्त्री को देखो—वह सारा किस्सा जानते हुए भी

कभी मेरी मेज पर मनोरमा के चित्र के रक्खे रहने पर विरोध नहीं करती--उफ मेरी स्त्री कितनी सीधी है--वह देवी है। अच्छा ही हुआ जो मनोरमा ने मुझसे विवाह नहीं किया--मेरी स्त्री मनोरमा से कहीं अच्छी है, कहीं अधिक सीधी है। मैं अपनी स्त्री से सुखी हूँ। फिर मनोरमा की फोटो की मेरी मेज़ पर क्या आवश्यकता--सब समाप्त हो गया तब उसकी याद ही क्यों बाकी रहे--' रामनारायण ने तसवीर फिर उठा ली। 'आज इस तसवीर को नष्ट क्यों न कर दें--पर नहीं, नहीं मैंने इससे प्रेम किया था--किया क्यों था, अब भी करता हूँ। यदि मैं उससे प्रेम न करता होता तो मुझे उस पर क्रोध क्यों होता ? हाँ, मैं कहता हूँ कि मैं उससे अब भी प्रेम करता हूँ। क्या यह ठीक है ? मैं उसके विवाह में क्यों नहीं गया ? उसके विवाह के बाद मैं उससे फिर कभी क्यों नहीं मिला--केवल इसलिए कि मैं उससे क्रोधित हूँ, और यही क्रोध की भावना मेरे प्रेम की द्योतक है।'

रामनारायण ने तसवीर की ओर देखा---'पर क्या यह आवश्यक ही है कि प्रेम का अन्त विवाह ही हो ? मैंने उससे प्रेम किया, क्या यही काफी नहीं है ? उसके विवाह कर लेने पर मुझे क्रोधित क्यों होना चाहिये था--उफ़ ! मैं कितना मूर्ख हूँ ! बिना विवाह किये भी प्रेम किया जा सकता है, फिर मैं अभी तक मनोरमा से मिला क्यों नहीं ?' रामनारायण के मुख पर एक पैशाचिक मुसकराहट आई। 'प्रेम तो बिना विवाहित हुए ही किया जा सकता है, उफ़ मैं कितना मूर्ख था कि मैं अभी तक मनोरमा से नहीं मिला ! अब क्यों न मिलूँ--मुझे देख कर वह कितनी प्रसन्न होगी, मेरे जाते ही वह आत्म-समर्पण कर देगी--कल ही चलना चाहिये ! हाँ प्रयाग से कानपुर का कितना खर्च लगेगा ? दस रुपए !' रामनारायण की मुस्कराहट लोप हो गई। 'दस रुपये ! एक कहानी लिखने से इतना मिल जायगा। पर अभी-अभी मकान का किराया नहीं दिया है, पत्नी बीमार है, और खाने का सामान खत्म होने को आ गया है। इन सब का प्रयत्न ! उफ़ जीवन में रुपया कितना भयानक है, और मनुष्य कितना विवश है ! प्रत्येक पग पर वह अपनी विवशता अनुभव करता है, मैं कितना

विवश हूँ ! धन ! धन ! संसार इसी धन का गुलाम है'--एकाएक विचार-धारा बदली--'और मनोरमा ! वह भी तो धन की गुलाम है ! उसने मुझसे प्रेम करते हुए भी उस लखपती से विवाह किया--केवल धन के वास्ते ! धन सभी बातों पर विजय पा सकता है, प्रेम पर भी--प्रेम पर भी !' रामनारायण ने तसवीर मेज पर रख दी--'हाँ रुपया प्रेम पर भी विजय पा सकता है--प्रेम पर ही क्यों, हमारी मनुष्यता पर, हमारी आत्मा पर ! हम सब रुपये के लिए घृणित-से-घृणित काम करते हैं, खुशामद करते हैं, झूठ बोलते हैं, धोखा देते हैं--कुछ नहीं, हम सब रुपये के गुलाम हैं--रामनारायण मुसकराया, उसने कागज़ पर अपना ध्यान लगाया, कलम चली--

'पर क्या मृत्यु भी उस पहेली को सुलझा सकती है...!'

विवशता

मैं पुरुष हूँ, इसलिए कभी-कभी मैं यह विश्वास कर लेने का दम भर लेता हूँ कि मैं स्त्री के प्रति पुरुष के प्रेम को समझता हूँ; पर मैं आज तक पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम को नहीं समझ सका। स्त्री के प्रेम में कितना त्याग है, कितना आत्म-समर्पण है और कितनी विवशता है। मैं सच कहता हूँ कि स्त्री के इस रूप को देखकर मुझे आश्चर्य होने लगता है। मैं कभी-कभी पूछ बैठता हूँ—'क्या स्त्री ने प्रेम करने के लिए ही जन्म लिया है?'

लोग मुझसे भले ही सहमत न हों, पर मैं तो यह जानता हूँ कि प्रेम पुरुष के लिए एक क्षणिक भावना है, जिसमें वासना और अहमन्यता का जबर्दस्त पुट रहता है; वह पुरुष का एक ऐसा खेल है जिसे खेलने में उसे सुख मिलता है; पर है वह एक खेल ही—उससे अधिक कुछ नहीं।

पर स्त्री के लिए प्रेम अस्तित्व है—शायद प्रेम ही उसका जीवन है। ऐसा क्यों है, इसी को तो मैं नहीं समझ सका।

और इसीलिए जब आप मुझसे पूछेंगे कि किस अभिलाषा से प्रेरित हो कर तथा किस आशा को लेकर मैं उस दिन लीला के यहाँ गया था। तब कहूँगा कि मैं उस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने को तैयार नहीं हूँ। जीवन की कुरूपताओं की विवेचना कुछ थोड़े-से समय के लिए भले ही रुचिकर हो, पर कुरूपता अन्त में कुरूपता है, उसे अधिक देर तक देखते रहने पर आँखें ही नहीं जल उठती हैं, सारा शरीर जल उठता है; यहाँ तक कि उस जलन से आत्मा तक झुलस उठती है। और इसीलिए इतना ही कह देना काफी होगा कि उस दिन मैं लीला के यहाँ पहुँचा था—भूला हुआ-सा एक चोर की भाँति!

पाँच वर्ष पहले लीला मेरी सब कुछ थी--मेरी दुनिया थी। वह मेरे पड़ोस में रहती थी, साथ खेली थी और साथ पढ़ी थी । हम दोनों के पिता अभिन्न मित्र थे; और मेरा ऐसा विश्वास था कि मैं लीला से प्रेम करता था। एक दिन लीला के दरवाजे बारात आई और वह अपने पति के साथ बिदा हो गई । लीला की और मेरी मित्रता उसके बाद साल भर तक पत्रों द्वारा और चली, पर धीरे-धीरे पत्र-व्यवहार भी बन्द हो गया ।

और इसके बाद मेरा भी विवाह हो गया। मेरी पत्नी सुन्दर थी--लीला से अधिक । अन्य बातों में भी वह बुरी न थी। धीरे-धीरे मैं लीला को भूल-सा गया ।

उस दिन एकाएक लीला की याद मुझे आ गई--एक अजीब प्रकार का कम्पन लि े हुए । पाँच वर्ष का समय कम नहीं होता । न जाने कितने परिवर्तन पाँच वर्ष में हो चुकते हैं । पर पाँच वर्ष बाद उस दिन जब लीला की याद मेरे हृदय में कसक उठी तब मैं अपने को न रोक सका। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि अतीत लौट सकता है--उसी तीव्रता के साथ, उसी उन्माद को लिये हुए ।

* * *

मुझे देखकर लीला को आश्चर्य हुआ, उसका आश्चर्य उसके मुख पर स्पष्ट था । पर उसका आश्चर्य मुझे सुख-दुख से सूना मालूम पड़ा--केवल आश्चर्य । उसके आगे कुछ नहीं ।

उस समय संध्या हो गई थी। लीला के पति बाबू रामकिशोर टहलने निकल गये थे और लीला कमरे में अपने दो बच्चों के साथ बैठी थी। मुझे देखते ही वह उठ खड़ी हुई--"अरे रमेश--तुम !" उसने उठते हुए कहा !

"हाँ लीला, मैं ही हूँ !" मुसकराने का प्रयत्न करते हुए मैंने उत्तर दिया ।

एक क्षण के लिए हम दोनों की आँखें एक दूसरे से मिलीं, और फिर लीला ने अपनी आँखें जमीन पर गड़ाते हुए एक ठंडी साँस ली । "अच्छा हुआ तुमने मेरी याद तो कर ली ।"

लीला के इस उत्तर से मैं स्तब्ध-सा रह गया। मैंने लीला को एक बार सिर से पैर तक देखा—और मैं आप से सच कहता हूँ, मैं सिहर उठा। मेरे सामने एक प्राणहीन स्त्री खड़ी थी; लीला बदल गई थी—बुरी तरह बदल गई थी। उसके गाल पीले पड़ गये थे, उसकी आँखों की चमक जाती रही थी। उसके मुख पर सूनेपन की स्पष्ट रेखायें विद्यमान थीं, उसकी आत्मा का सूनापन उसके सारे अस्तित्व में छलक पड़ा था।

करीब ग्यारह बजे रात बाबू रामकिशोर लौटे। उस समय वे होश में कम थे।

बाबू रामकिशोर की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की थी। सुन्दर मुख जिसकी कान्ति समय के बहुत पहले उतर गई थी और बड़ी-बड़ी आँखें जो गड्ढे में धँस रही थीं तथा जो कभी-कभी बुरी तरह चमक उठती थीं। बाबू रामकिशोर शहर के बहुत बड़े रईसों में गिने जाते थे। कहा जाता है कि लीला के पिता ने लीला का विवाह करते समय रामकिशोर के रुपयों पर अधिक ध्यान दिया था। पर लीला के पिता को सम्भवतः यह पता न था कि वे अपनी पुत्री का विवाह एक बिगड़े हुए आदमी के साथ कर रहे हैं।

रामकिशोर ने मेरा कुशल-क्षेम पूछा। इतना जानता हूँ कि मेरा कुशल-क्षेम पूछने में उन्हें कुछ परिश्रम करना पड़ा था, और इसके बाद वे सोने चले गये।

दूसरे दिन बाबू रामकिशोर ने मेरा खुले हृदय से स्वागत किया। मुझे उस समय यह देख कर आश्चर्य हुआ कि लीला को बाबू रामकिशोर का मेरा स्वागत करना अच्छा नहीं लग रहा था।

संध्या के समय बाबू रामकिशोर मुझे और लीला को सिनेमा ले गये। लीला गई तो थी, पर मुश्किल से। ऐसा मालूम होता था कि लीला को सिनेमा अच्छा नहीं लग रहा है। वह बिलकुल भावनाहीन बैठी रही। इंटरवेल में बाबू रामकिशोर ने मुझसे धीरे से कहा—"रमेश एक आध पेग लोगे ?"

"नहीं," मैंने उत्तर दिया।

रामकिशोर लीला से यह कहते हुए, "अभी आता हूँ" बाहर चले गये। मैंने लीला से पूछा,—"लीला, बाबू रामकिशोर की क्या हालत है ?"

बड़े करुण स्वर में लीला ने उत्तर दिया—"रमेश, यह न पूछो !"

"नहीं, बतलाओ तो ! मैं देख रहा हूँ कि तुम बड़ी दुखी हो।" मैंने आग्रह किया।

"तो सुनो—हम पर बहुत अधिक कर्ज लदा है। ये दुनिया को मानो जानते ही नहीं। सामर्थ्य से बाहर खर्च करते हैं। आय बढ़ाने के लिए घुड़-दौड़ खेलते हैं, और वहाँ हारकर अपना दुःख दूर करने के लिए शराब पीते हैं।"

लीला की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि रामकिशोर लौट आये। उस समय उनकी आँखें कुछ लाल थीं। लीला ने उनकी ओर देखा—कुछ देर तक उसकी आँखें रामकिशोर की आँखों से मिली रहीं। फिर राम-किशोर हँस पड़े। उन्होंने लीला का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"देखो मुझे माफ कर दो—मैं तो गलतियाँ करने का इतना आदी हो गया हूँ कि अब मेरा सँभलना गैरमुमकिन है।" यह कह कर उन्होंने लीला की ओर से अपनी आँखों के आँसुओं को छिपाने के लिए मुँह फेर लिया। लीला ने एक ठंडी साँस भरी और एक विवश भाव से उसने मेरी ओर देखा।

हम लोग सिनेमा से लौटे—और उस रात मुझे नींद नहीं आई। मैं न जाने क्या-क्या सोचता रहा। उस आलीशान मकान का वह आलीशान कमरा जिसमें मैं लेटा हुआ था, एक अजीब कुरूप की नजर से मुझे देख रहा था। मुझे ऐसा मालूम होता था कि वैभव का पिशाच बराबर मेरे सिर पर पहरा दे रहा है।

सुबह हुई—बड़ी मुश्किल से। जलपान करके मैंने कपड़े पहने। बाबू रामकिशोर ने पूछा,—"कहो भाई, क्या प्रोग्राम है ?"

"शहर घूमने का इरादा है !"

बाबू रामकिशोर ने ड्राइवर को आवाज दी—"रमेश बाबू को शहर घुमा लाओ !" और उन्होंने मुझसे कहा—"मुझे क्षमा कीजिएगा। मेरी तबीअत ठीक नहीं है।"

दो घण्टे बाद जिस समय मैं लौटा मैंने देखा कि लीला बैठी रो रही है—रो नहीं रही बल्कि हिचकियाँ ले रही है, और बाबू रामकिशोर शून्यदृष्टि से अपने चारों ओर देखते हुए बैठे थे। मुझे देखकर लीला ने बल लगा कर अपने को सँभाला। उसने खाने का प्रबन्ध किया, और हम सब खाने बैठे। पर उस समय न लीला ने खाया और न बाबू रामकिशोर ने। उन दोनों के कारण मुझसे भी नहीं खाया गया।

खाना खाकर जब हमलोग उठे तब बाबू रामकिशोर ने मुझसे कहा—"रमेश, मेरी तबीअत ठीक नहीं है, मैं तो लेटूँगा। शाम को हम लोग घुड़-दौड़ चलेंगे। इस समय लीला से बातें करो।" यह कहकर वे अपने कमरे में चले गये।

हम दोनों थोड़ी देर तक हाल में बैठे रहे। मैंने कहा—"लीला, तुम इतनी उदास क्यों हो—इससे लाभ ही क्या है ?"

"शायद कुछ नहीं।" किंचित् मुस्कराते हुए लीला ने कहा—"लाभ तो किसी काम में नहीं है और उदास होना तो एक स्वाभाविक बात है।"

लीला ने बात ठीक कही थी। एकाएक मैं लीला से पूछ बैठा—"क्या तुम बाबू रामकिशोर से प्रेम करती हो।"

मुझे पता नहीं कि किस भावना से प्रेरित होकर मैं यह प्रश्न कर बैठा, और उस प्रश्न के पूछने का मुझे आज तक दुःख है। लीला ने बड़े आश्चर्य के साथ मेरी ओर देखा, मानो मैंने कोई बहुत अनुचित बात कह दी हो। फिर उसने बाबू रामकिशोर के कमरे की ओर देखते हुए कहा—"हाँ रमेश ! बहुत अधिक—इतना अधिक कि जिसकी तुम कल्पना तक न कर सकोगे !"

हम दोनों मौन हो गये; वह बड़ा-सा हाल बिलकुल स्तब्ध था; बड़ी घड़ी का 'टिक-टिक' शब्द साफ सुनाई पड़ रहा था, और मैं सच कहता

हूँ कि घड़ी की वह आवाज मुझे भयावनी लग रही थी । लीला अपने गाल पर हाथ रक्खे कुछ सोच रही थी; उसका पीला मुख न जाने क्यों धुँधला पड़ गया था ।

मैंने अनुभव किया कि वहाँ का सारा वातावरण मेरे लिए असह्य हो उठा । अपनी कल्पना के सौन्दर्य के स्थान पर वास्तविकता की कुरूपता देखकर मैं विचलित हो उठा । थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद मैंने लीला से कहा—"लीला, मुझे तुम्हारी हालत देखकर बड़ा दुःख हुआ है । मैं आज शाम को जाना चाहता हूँ ।"

"इतनी जल्दी !" लीला चौंक-सी उठी । फिर उसने धीरे से कहा —"अच्छी बात है !"

सन्ध्या समय लीला ने मेरा असबाब कार पर रखवा दिया । बाबू रामकिशोर उस समय घर पर नहीं थे, शायद वे घुड़दौड़ चले गये थे । लीला मुझे पहुँचाने के लिए स्वयं स्टेशन चली !

गाड़ी आने में अभी आध घण्टे की देर थी । हम दोनों वेटिंग रूम में बैठे थे । एकाएक लीला की दृष्टि से मैं चौंक उठा । उसकी दृष्टि में अजीब बात थी—एक अजीब करुणा थी, एक अजीब विवशता थी । थोड़ी देर तक वह मुझे एकटक देखती रही । फिर उसने धीरे से मुझसे कहा—"रमेश ! तुमने मुझसे कभी प्रेम किया है ! है न ?"

मैं चुप रहा, पर मेरा हृदय तेजी से धड़क रहा था । बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये हुए लीला कहती गई—"रमेश, तुम मुझे क्षमा कर देना, मैं बड़ी अभागिनी हूँ, बड़ी पापिनी हूँ । मैंने तुम्हारे साथ एक बड़ा अपराध किया है । रमेश, जिस समय तुम घूमने गये थे, वे एक वारण्ट से गिरफ्तार हो गये । उनके ऊपर दो सौ रुपये की डिग्री थी और उनको छुड़ाने के लिए रमेश, मैंने तुम्हारे सूटकेस से तुम्हारे दो सौ रुपये निकाल लिये !"

मैं स्तब्ध-सा रह गया, मैंने केवल इतना कहा—"लीला !"

लीला के हृदय का बाँध फूट पड़ा—"रमेश ! आज दिन भर मैं रोई हूँ, और न जाने कब तक मुझे रोना पड़ेगा । पर मैं क्या करूँ, मैं कितनी

विवश हूँ। वे मेरे सब कुछ हैं--अपने सारे जेवर मैंने बेच दिये, अब मैं कंगाल हो गई हूँ। लेकिन भगवान ने मुझे इसके आगे भेजा--मुझे आज चोरी भी करनी पड़ी। रमेश, तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि तुम मुझे क्षमा करो और हमारे लिए भगवान से प्रार्थना करो !"

उस समय गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ गई थी। रामकिशोर के ड्राइवर ने मेरा असबाब कुली से उठवा कर गाड़ी पर रखवाया। मैंने लीला से कुछ कहा नहीं, चुपचाप लीला का हाथ पकड़े हुए मैं गाड़ी पर बैठ गया। थोड़ी देर तक मैं कुछ सोचता रहा, फिर मैंने लीला को एक बार अच्छी तरह से देखा।

और मैंने लीला के मुख पर क्या देखा, यह मैं नहीं बतला सकता। पर इतना कह सकता हूँ कि लीला को देखकर मेरे हृदय में एक प्रकार की मुर्दनी-सी छा गई--लीला के हृदय की भावनायें बरबस मेरे हृदय में प्रवेश कर गई थीं।

मैं एकाएक चौंक उठा, रेल ने सीटी दी थी। लीला गाड़ी के बाहर खड़ी थी। उसने धीरे से कहा--"रमेश ! मुझे क्षमा करते हो न--बोलो !"

गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी। उस समय मैंने लीला से कहा--"लीला, मैं कह नहीं सकता कि तुमने कोई अपराध किया है या नहीं। यदि तुमने अपराध किया है तो मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। भगवा्‌ तुम्हारा भला करें।"

गाड़ी तेज हो गई थी। मैं लीला को देख रहा था और लीला मुझे देख रही थी--एकटक मौन !

कायरता

"अगर मैं आप से कह दूँ कि आप कायर हैं तो आप बुरा मान जाइएगा। मान जाइएगा कि नहीं ?" कोने में बैठे हुए बूढ़े ने कुछ रुक-रुक कर कहा। "पर मैं अपने इस साठ वर्ष के अनुभव से इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हम सब कायर हैं, और कायर होना इतना बड़ा दुर्गुण भी नहीं है जितना आप समझते हैं।"

हम लोगों ने उस बूढ़े की ओर देखा। उसका कृश मुख, जिस पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, शान्त तथा गम्भीर था। वह एक खद्दर का कुरता और खद्दर की धोती पहिने था, और उसकी गांधी टोपी मेज पर रक्खी थी। उसके सर के बाल सन की तरह सफेद थे, दाढ़ी और मूछ साफ थी। उसकी आँखों में एक विशेष तरह की चमक थी और उसके स्वर में एक प्रकार की मिठास भरी दृढ़ता।

हम लोग वेटिंग रूम में बैठे हुए गपबाजी कर रहे थे। हम चार आदमी थे, विश्वम्भर दयाल सबजज, रामचन्द्र एडवोकेट, प्रेमनाथ प्रोफेसर और मैं। रामचन्द्र ने कहा था, "अवध यदि समाज के भय से प्रेमा से विवाह नहीं करता तो कायर है !" और रामचन्द्र की बात समाप्त होने पर उस बुड्ढे ने जिसके अस्तित्व तक का हम लोगों को पता न था यह बात कही थी।

रामचन्द्र उस बुड्ढे की तरफ से घूम पड़ा, "मैं आपकी बात का मतलब नहीं समझा। कायरता बहुत बड़ा नैतिक अपराध है—यह तो सर्वमान्य बात है।"

उस बुड्ढे ने कुछ रुक कर उत्तर दिया, "शायद आप ठीक कहते

हैं, अधिकांश मनुष्य कायरता को बहुत बड़ा नैतिक अपराध बिना सोचे-समझे कह देंगे। पर अधिकांश मनुष्य सोचने और समझने की क्षमता कब रखते हैं? एक बात आप याद रखिएगा कि जिन लोगों का अपराधियों से पाला पड़ा है वे आप से कह देंगे कि प्रायः सब अपराधी साहसी होते हैं। मैंने तो किसी अपराधी को कायर नहीं पाया। और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि साहस ही अपराध है, हमें जो चीज अपराधी होने से रोकती है वह हमारी कायरता ही है!" यह कह कर वह बूढ़ा जोर से हँस पड़ा और उसने सब लोगों की ओर ध्यान से देखा। हम लोग मौन थे। उस बूढ़े ने फिर आरंभ किया, "मैंने आज एक मजेदार बात कही है, आप यह सोचते होंगे। पर क्या करूँ दुर्भाग्यवश यह सत्य है। इस संसार में सफल वह है जो अपराधी है, और अपराधी वही हो सकता है जो साहसी है। एक बात याद रखिएगा, अपराधी होना सफलता की सीढ़ी है और यह भाग्य की बात है कि कुछ पकड़ जाते हैं और दण्ड पाते हैं और कुछ मौज करते हैं।

"मुझको ही लीजिए न! मैं कायरता की जीती-जागती तसवीर हूँ। यदि मुझमें थोड़ा-सा साहस हो तो मैं बहुत बड़ा आदमी हो सकता हूँ। बस थोड़ा-सा साहस—और मेरे जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन हो सकता है; यही निराशा-विवशता और सफलता का अस्तित्व जो मेरे ऊपर एक असह्य भार-सा लदा हुआ है, यदि इसे एक बार अपने ऊपर से उतार कर फेंक देने भर का साहस होता—तो! पर नहीं, मेरी कायरता मुझे अपराधी बनने से सदा रोकती रही है, और अब भी रोक रही है—मेरी सफलता में बाधा-रूप अड़ी है।

"मैं देख रहा हूँ मनुष्य मनुष्य को खा डालने के लिए तैयार है। मैं देख रहा हूँ समर्थ अधिकारी है और असमर्थ अधिकार में है; मैं देख रहा हूँ कि सामर्थ्य, एक अंधे और पैशाचिक बर्बरता से युक्त साहस का दूसरा नाम है।

"और मैं आप से पहले ही कह चुका हूँ कि मैं कायर हूँ। आज तीस

वर्ष हुए जब से मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ भटक रहा हूँ। तीस वर्ष पहले जब मेरे बड़े भाई जिन्दा थे, मैं अमीर था। मेरे भाई के कोई संतान न थी, उनकी संपत्ति का उत्तराधिकारी मैं था। पर भाई साहब की मृत्यु के बाद मेरी भावज ने मुझे घर से निकाल दिया। मैं मुकदमा लड़ा, पर भावज ने लम्बी रकम जज को दी और वे जीत गईं। यह तै हुआ कि भावज की मृत्यु के बाद ही मुझे सम्पत्ति मिल सकती है।

"जनाब, तीस वर्ष तक मैं दुःख भोगता रहा। इस आशा में कि कभी-न-कभी वह औरत मरेगी और मुझे उसकी सम्पत्ति मिलेगी ही। मैंने कलकत्ते में नरक देखा है, नरक! एक गन्दी कोठरी में अपनी पत्नी और बच्चों के साथ मैंने तीस वर्ष बिताए हैं। और वह स्त्री अकेली करोड़ों की सम्पत्ति भोगती रही। और तीस वर्ष बाद मृत्यु ने उस स्त्री पर भी फेरा किया। आप नहीं समझ सकते कि इन तीस वर्षों को मैंने किस प्रकार व्यतीत किया; एक-एक मिनट, एक-एक घन्टा, एक-एक दिन, एक-एक सप्ताह, एक-एक महीना, और एक-एक वर्ष गिन कर किस प्रकार मैंने अपने यौवन को नष्ट किया, केवल एक आशा के बल पर!

"और तीस वर्ष बाद—जब मुझे अपनी भावज की मृत्यु की सूचना मिली, मेरा हृदय ठंडा पड़ चुका था। मेरे हृदय में न उमंग थी और न स्पन्दन। एक भयानक तथा विकराल सूनापन मेरी आत्मा में प्रवेश कर चुका था। मेरे लड़कों ने जब यह सूचना सुनी तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। वे दरिद्र पिता के पुत्र वैभव की कल्पना ही नहीं कर सकते। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की और बड़ी मुश्किल से वे समझ सके।

"मैं लौटा—अकेला, सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए, और लौट कर जो कुछ देखा, उससे मैं स्तब्ध रह गया, मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और मेरे पैरों के नीचे से पृथ्वी खिसक गई।

"मैंने देखा एक चौबीस-पचीस वर्ष का नवयुवक मेरी सम्पत्ति पर अधिकार जमाए बैठा है और अपने को मेरा भतीजा बतलाता है। उसका कहना था कि मेरे भाई ने उसे गोद लिया था इतना बड़ा झूठ! पर मैं कर

ही क्या सकता था ? सम्पत्ति पर उस लड़के का अधिकार था।

"पड़ोसियों ने मुझे सब बातें बतलाई । वह लड़का मेरी भावज का भतीजा था। वह बुढ़िया उसको वहाँ छोड़ गई थी, मुझे पूर्ण रूप से मिटाने के लिए। साथ ही पड़ोसियों ने मुझे सलाह दी कि मैं उस सम्पत्ति का दावा करूँ। सम्पत्ति मेरी है, इसकी वे गवाही देने को तैयार थे। एक बार मैं मुकदमा लड़ भी चुका था, संपत्ति पर अधिकार पाना निश्चित था।

"और जनाब, एक बार फिर मुकदमाबाजी हुई। बचे-खुचे जेवर तथा अपना अन्य सामान बेच कर मैं मुकदमा लड़ा। एक वर्ष से अधिक हो गया है—और अब तो भूखों मरने की नौबत आ गई है, पर मुकदमा अभी तक चल ही रहा है।"

उस समय मैंने देखा कि उसकी बातों से विश्वम्भर दयाल जरा विचलित हुए। उन्होंने पूछा,—"आपका मुकदमा कहाँ है ?"

"यहीं इसी शहर में।" उस बूढ़े ने कहा।

"आपका नाम क्या है ?" विश्वम्भर दयाल ने फिर पूछा।

"रामेश्वर !" उस बूढ़े ने उत्तर दिया। कुछ चुप रह कर उसने फिर कहा, "पर इससे क्या होता है, मेरी कहानी अभी अधूरी ही है। हाँ, मुक-द-ा लड़ा और आप देख ही रहे हैं कि मैं कितना बूढ़ा हूँ। मेरे बड़े लड़के ने पैरवी की। और अब की बार जब वह कलकत्ता गया, उसने बहुत करुण स्वर में मुझ से कहा, बाबू जी, परमानन्द ने (परमानन्द उस युवक का नाम है जिसके साथ मुकदमाबाजी हो रही है) जज सो पचास हजार की रिश्वत दे दी है; फैसला हमारे खिलाफ होगा।

"अपने लड़के की बात सुनकर मैं बेहोश हो गया। मेरे हृदय की धड़कन क्यों नहीं बन्द हो गई, यह मैं नहीं जानता—शाय़द अभी और कुछ भोगना बाकी है। मेरे पास अब एक पैसा नहीं जिससे आगे लड़ूँ—कर्ज़ से बुरी तरह लदा हुआ हूँ। अब क्या होगा ? एक महीने तक मैं बीमार रहा हूँ।

"कल बहस है—पर उससे होता क्या है ? पचास हजार रुपए

मनुष्यता पर बड़ी आसानी से विजय पा सकते हैं, मैं जानता हूँ कि मैं हार जाऊँगा। मैं हाईकोर्ट से जीत सकता हूँ, पर हाईकोर्ट तक लड़ने के लिए मुझमें सामर्थ्य नहीं है। यह बात मैं ही नहीं जानता हूँ, इसे परमानन्द भी जानता है और वे जज साहब भी जानते हैं जिन्होंने रिश्वत ली है।"

कुछ रुक कर उस बूढ़े ने फिर कहा—"और मैं आप से पहले ही कह चुका हूँ कि मैं कायर हूँ। थोड़े साहस की आवश्यकता है और मैं पासा पलट सकता हूँ। मैं अगर उस जज को गोली मार दूँ तो अभी सब कुछ ठीक हो सकता है। परमानन्द अब दूसरी बार पचास हजार रिश्वत नहीं दे सकता, यह निश्चय समझिए, और अगर वह दे भी सकता तो दूसरे जज के रिश्वत स्वीकार करने में मुझे शक है। बस थोड़ा-सा साहस मुझ में यदि होता तो! रही मेरी, मैं बूढ़ा हूँ, यदि पकड़ा गया तो मेरी मृत्यु से मुझे विशेष हानि नहीं होगी। इस निराशा और असफलता के अस्तित्व की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है, पर ऐसी हालत में मेरे लड़के तो सुखी रहेंगे। और यदि नहीं पकड़ा गया तो मैं बहुत बड़ा आदमी हो जाऊँगा। पर नहीं, यह सम्भव नहीं। मैं कायर हूँ और यह जानते हुए भी कि अपनी कायरता के कारण मैं पशु से भी गया बीता हूँ, मैं कायरता नहीं छोड़ सकता—नहीं छोड़ सकता।"

यह कह कर वह बूढ़ा उठ खड़ा हुआ और कमरे के बाहर चला गया।

और उस समय मैंने देखा कि विश्वम्भर दयाल का मुख पीला पड़ गया है, उनके मस्तिष्क पर पसीने की बूँदें चमक रही हैं और उनका सारा शरीर काँप रहा है।

काश कि मैं कह सकता !

काश कि मैं कह सकता ! लेकिन नहीं, यह सम्भव ही नहीं ! कौन कह सकता है और कह सकेगा ? इन रहस्यों को सुलझाने का एक अविकल विफल प्रयत्न अनादि काल से होता रहा है और अनन्त काल तक होता रहेगा; पर एक भयानक उलझन से भरी हुई जिन्दगी को लेकर आने वाले और अन्त में जिन्दगी की उलझन को दूसरों के कंधों पर और भी विकृत रूप करके डाल कर चले जाने वाले मनुष्य के अधिकार के वाहर की वात है कि वह रहस्यों को सुलझा सके ! पर फिर भी इन रहस्यों के प्रति उदासीन हो सकना भी तो मेरी ताक़त में नहीं है ! यह जानते हुए कि पत्थर पर सर पटकने से सर ही फूटता है, पत्थर नहीं; मैं पत्थर पर सर पटक रहा हूँ !

रामनाथ—वही रामनाथ, जिसे कुछ थोड़ा-सा सहृदय और अक्लमन्द समझने के कारण होस्टल में मैं परम मित्र की भाँति मानता था—मेरे नगर में कलक्टर होकर आया था। उसमें वही शान और योग्यता थी, जो आई० सी० एस० वालों में मिला करती है। अक्सर मैं उसके यहाँ चला जाया करता था; वह मुझ से अच्छी तरह से मिलता था; कभी-कभी मेरी गरीवी पर मुझसे सहानुभूति भी प्रकट कर देता था।

और उस दिन दिन-भर भयानक लू के कारण वाहर न निकलने के वाद सन्ध्या के समय मैं घूमने चल दिया। कोई काम न था, और इधर बहुत दिनों से रामनाथ से मिला भी न था, इसलिए मेरे पैर रामनाथ के वँगले की ओर उठ गये। चपरासी मुझे जानता था, इसलिए न तो उसने इनाम पाने की लालच में मेरा कार्ड माँगते हुए मुझे सलाम ही किया और न उसने

मुझसे यही कहा कि साहब घर पर नहीं हैं। सीधा मैं बँगले में दाखिल हुआ।

रामनाथ उस समय पीछे वाली लान पर बैठे थे, और उनके सामने वाली मेज पर एक बड़ा पेग रखा था। उनके हाथ में एक पुस्तक थी, जिसके पन्ने वे बड़ी लापरवाही के साथ उलट-पुलट रहे थे। मुझे देखते ही पुस्तक उन्होंने मेज पर रख दी, गिलास से एक घूँट पीते हुए उन्होंने कहा—"क्यों जी नरेश, कभी-कभी पी लेने में तो तुम्हें आपत्ति न होनी चाहिये !"

मैंने केवल मुसकरा दिया।

उन्होंने गिलास मेज पर रख दिया—"बहुत दिनों बाद आये हो—एक अरसा हो गया। अच्छी तरह तो रहे ?"

"हाँ, रहा तो अच्छी ही तरह। आया इसलिए नहीं कि आने की फ़ुरसत ही नहीं मिली, फिर सोचा कि शायद तुम व्यस्त हो।"

रामनाथ ने पुस्तक की ओर संकेत करते हुए कहा—"इस पुस्तक की लेखिका को तो तुम जानते ही होगे ?"

सौदामिनी देवी की 'प्रेम की आग' नामक पुस्तक उठाते हुए मैंने कहा—"हाँ, अच्छी तरह से ! पुस्तक कैसी लगी ?"

"मुझे तो पुस्तक से अच्छी लगी लेखिका की तस्वीर !"

रामनाथ हँस पड़े—"क्यों जी नरेश, सौदामिनी देवी ऐसी ही हैं, जैसी उनकी तसवीर है ?"

"नहीं, तसवीर की सुन्दरता से पचहत्तर फी-सदी घटा दो; जो बाकी बचे, उसकी कल्पना कर लो !"—हँसते हुए मैंने पुस्तक मेज़ पर रख दी।

रामनाथ ने गम्भीर होकर कहा—"समझ में नहीं आता कि लेखिका ने अपनी तसवीर इस पुस्तक में क्यों दी और अगर दी भी तो अधिक-से-अधिक सुन्दर दिखाने की कोशिश क्यों की ? नरेश, इस सब के पीछे कौन-सा मनोविज्ञान काम कर रहा है ? मैं तो समझता हूँ कि पुस्तक पढ़ने-वाले को लेखिका का एक आफ़र है, जिसमें यह कहा गया है कि मेरा दर-वाजा खुला है, तुम आ सकते हो ! हाँ, तुम्हें पसन्द करना अथवा नापसन्द करना यह मेरे ऊपर है !"

एक दफे जी में आया कि मैं रामनाथ के उस कथन का विरोध करूँ—हर एक आदमी अपने को खूबसूरत समझता है, हर एक आदमी अधिक-से-अधिक खूबसूरत दीखने की कोशिश करता है। इस बात पर किसी भद्र महिला के चरित्र के सम्बन्ध में आक्षेप कर देना कोई अच्छी बात नहीं; पर मैं यह भी जानता हूँ कि इस तरह के मजाक सभ्य-से-सभ्य समाज में हुआ करते हैं, इनपर आपत्ति करना असभ्यता का द्योतक है। और मैं अपने को सभ्य समझता हूँ, इसलिए विरोध न करके मैंने हँसते हुए कहा—"बात मजेदार कह गये, कहो तो देवीजी से परिचय करा दूँ ?"

"नहीं जी, दुनिया में देवियों की कमी नहीं है, एक-से-एक सुन्दर और नव-वयस्का। केवल पैसा चाहिए !"—यह कहकर रामनाथ ने गिलास खाली कर दिया।

हम दोनों थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे। इतने में रामनाथ ने कहा—"नरेश, जरा अपने पीछे तो देखो !"

मैंने मुड़कर देखा, एक स्त्री, जिसकी अवस्था इक्कीस या बाईस वर्ष की होगी, रामनाथ के बच्चों के साथ बाग में घूम रही थी। मुड़-मुड़कर वह हम लोगों की ओर देखती भी जाती थी।

रामनाथ ने धीरे से मुझसे कहा—"देखते हो उस औरत को ! कैसी है ? है न सुन्दर !"

"हाँ, निश्चय ही वह सुन्दर है !"—मैंने कहा।

और पढ़ी-लिखी भी है। मेरे यहाँ वह लड़कों का ट्यूशन करना चाहती है। और—और—मैं जानता हूँ कि वह मुझे भी पढ़ा सकती है—समझे !" और रामनाथ खिलखिलाकर हँस पड़े।

"मैं नहीं समझा !"

"नहीं समझे ! कितने बेवकूफ हो ! अरे, कुछ रुपयों में तुम इसे पा सकते हो—सिर्फ कुछ रुपयों में ! मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। जिन्होंने उसे मेरे यहाँ बच्चों के ट्यूशन के लिए भेजा है, उन्होंने मुझसे स्पष्ट कर दिया था कि बच्चों के पढ़ाने के साथ-साथ यह मुझे भी पढ़ा सकती है।"

"तो क्या तुमने उसे अपने यहाँ रख लिया ?"

"नहीं जी, अपने बच्चों को वेश्या से भी गई-बीती इस औरत से शिक्षा दिलवाने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।"

मैंने देखा कि रामनाथ के मुख पर उस स्त्री के प्रति घृणा के भाव स्पष्ट रूप से अंकित थे। वह स्त्री अब वहाँ से दूर निकल गई थी।

रामनाथ ने फिर आरम्भ किया—"नरेश, चाँदी के कुछ टुकड़ों के लिए एक स्त्री अपना शरीर बेच सकती है, यह भावना ही मेरे लिए असह्य है। स्त्री का सबसे बड़ा धन है उसकी इज्जत। उसी इज्जत को यह स्त्री अपनी हथेली पर लिये हुए बाजार में घूम रही है। यह हमारे समाज का एक बहुत बड़ा अभिशाप है। इस जिन्दगी से तो मौत अच्छी है। न जाने कितने ही नवयुवकों के लिए यह स्त्री पाप और कुमार्ग के लिए एक भयानक प्रेरणा के रूप में खड़ी है—समझे !"

थोड़ी देर तक चुप रहकर रामनाथ ने फिर कहा—"लेकिन है बला की खूबसूरत ! अगर मेम साहब का डर न होता, तो मैं जरूर इससे कुछ पढ़ता।" और वह जोर से हँस पड़े।

* * *

उस दिन जब मैं रामनाथ के यहाँ से लौटा, तब मैं विचारों में डूबा हुआ था। मैं उस स्त्री के सम्बन्ध में ही सोच रहा था। मैं उस स्त्री के पतन के ही सम्बन्ध में सोच रहा था, दया, त्याग और पवित्रता की मूर्ति नारी इतना अधिक किस प्रकार गिर सकती है ! उस स्त्री के मुख पर मैंने कुछ देखा था, जिसे मैं समझ नहीं सका था; पर वह कुछ था बड़ा करुण और दयनीय !

मेरी विचार-धारा मुझे असह्य हो उठी, और शहर की चहल-पहल में इस दुखद विचार-धारा को डुबाने के लिए मैं रामनाथ के बँगले से सीधे शहर की ओर चल दिया। एक गिलास शरबत पीकर जब मैं पान खाने के लिए बढ़ा, तब परमेश्वरी से मुलाकात हो गई। पान खाकर मैं पान की दूकान से कुछ हटकर परमेश्वरी के साथ बात-चीत करने लगा।

इसी बीच वही स्त्री, जिसे मैंने रामनाथ के यहाँ देखा था, वहाँ से निकली। परमेश्वरी ने उसे नमस्कार किया, और नमस्कार का उत्तर देते हुए वहाँ रुक गई। परमेश्वरी ने उससे मेरा परिचय कराया--"हिन्दी के लेखक श्री नरेशचन्द्र और . . .विद्यालय की अध्यापिका श्रीमती निरुपमा देवी।"

निरुपमा ने मुझे ध्यान से देखा--"आप ही का नाम श्री नरेशचन्द्र है ! आपका नाम तो बहुत सुना था, आज आपके दर्शन भी हुए, यह मेरा सौभाग्य है। आपको शायद आज मैंने कलक्टर साहब के यहाँ देखा था !"

"जी हाँ ! आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई !"

परमेश्वरी ने कहा--"यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो ? चलो मेरे ही यहाँ चलो।" यह कह कर उसने निरुपमा से कहा--"आप अपने घर ही तो जा रही हैं ?"

"जी हाँ !"

"तो फिर ताँगे पर बैठ जाइए, हम लोग आपको आपके घर उतार देंगे।" यह कह कर वह ताँगा लेने के लिए आगे बढ़ा।

परमेश्वरी के हटते ही निरुपमा ने मुझसे कहा--"मैं आपसे कुछ बातें करना चाहती थी; कल शाम को क्या आपको अवकाश मिलेगा ?"

"हाँ, आप कल चार बजे शाम को आ सकती हैं !"

*   *   *

दूसरे दिन ठीक चार बजे निरुपमा देवी मेरे यहाँ पहुँचीं। उसका मुख पीला था, और ऐसा मालूम होता था कि वह किसी भयानक चिन्ता से ग्रस्त है।

बैठते हुए उसने कहा--"क्षमा कीजिएगा जो आपको कष्ट दे रही हूँ ! पर क्या करूँ, मुझे आपके यहाँ आना ही पड़ा !" और यह कहकर उसने अपने मुख पर मुसकराहट लाने का एक विफल प्रयत्न किया।

उसकी हिचकिचाहट दूर करने के लिए मैंने कहा--"कोई बात नहीं, जो कुछ मुझ से हो सकता है, मैं आपके लिए करने को तैयार हूँ।"

"नरेशचन्द्रजी, बात यह है कि मुझे ट्यूशन की बहुत अधिक आव-

श्यकता है, और कलक्टर साहब के यहाँ इसी आशा को लेकर कई दिनों से जा भी रही हूँ; पर मुझे जान पड़ता है कि वे मुझे टाल रहे हैं।"

मैंने अपने सामने बैठी स्त्री को देखा। वह एक रेशम की साड़ी पहने थी, जो काफी पहनी जा चुकी थी और अब कई जगह से फटने लगी थी। वह सुन्दरी थी अवश्य; पर उसकी आँखों की चमक जाती रही थी। उसके होंठ सूखे हुए थे और मुख पीला था।

कुछ रुक कर उसने फिर कहना आरम्भ किया--"आप सोचते होंगे कि मैं नौकरी कर रही हूँ, फिर मुझे ट्यूशन की क्या आवश्यकता; लेकिन मैं आपसे सच कहती हूँ कि मेरी हालत बड़ी खराब है। मेरी विधवा सास है। अनब्याही ननद है; देवर है जो स्कूल में पढ़ता है और दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। आप स्वयं समझ सकते हैं कि क्या इन सब लोगों के भरण-पोषण के लिए ४० रु० महीने की तनख्वाह काफी है, और नरेशजी, यही नहीं, इसके साथ मेरे पति कर्ज छोड़ गये हैं, जिसे अदा करना पड़ता है।"

"और आपके पति कहाँ हैं ?"--मैंने पूछा।

निरुपमा की आँखों में आँसू आ गये। आकाश की ओर इशारा करते हुए उसने कहा--"वहाँ--दो वर्ष हुए अपनी मातृभूमि को हम लोगों से अधिक महत्त्व देने के कारण वहाँ चले गये।"

मैं चौंक उठा--"यह कैसे ?"

निरुपमा सम्हल कर बैठ गई--"देखिए, बात यह थी कि उस दिन कांग्रेस का जलूस निकल रहा था। वे भी जलूस में थे। जलूस रोका गया और कलक्टर साहब ने बजाय इसके कि जलूसवालों को कानून तोड़ने के अपराध पर गिरफ्तार करते, पुलिस से लाठियों द्वारा जलूस पर प्रहार करवाया। और उस भीड़ में मेरे पति सबसे आगे थे। लोगों पर लाठियाँ पड़ रही थीं--मेरे पति भी गिर पड़े; पर वे बलिष्ठ नवयुवक थे, उनके रक्त में जोश था। कलक्टर साहब सामने ही खड़े हुए पिटनेवालों पर हँस रहे थे। और नरेशजी, वह कलक्टर भी हिन्दुस्तानी था।"

"हिन्दुस्तानी"--

"जी हाँ--मिस्टर रामनाथ के पहले वही थे--उनका नाम तो मुझे याद नहीं। हाँ, फिर मेरे पति को क्रोध आ गया--एक हिन्दुस्तानी अधिकार के मद में भूला हुआ निर्दयता के साथ अपने ही भाइयों को पिटवा रहा था और हँस रहा था। उन्होंने कड़क कर कहा--'सरकार के टुकड़ों के गुलामों को यह जान लेना चाहिए कि वे टुकड़े उन्हें हम लोगों से ही मिल रहे हैं !' उनका इतना कहना था कि कलक्टर साहब का हँसना बन्द हो गया, और उनकी आँखें लाल हो गईं; और कलक्टर साहब की आँखों का लाल होना था कि पास खड़े हुए पुलिस वाले मेरे पति पर टूट पड़े। नरेशजी, फिर मेरे पति उस मार से बेहोश हो गये, और वह बेहोशी फिर कभी न टूटी--कभी न टूटी और मेरी दुनिया लुट गई !"

मैं चुपचाप निरुपमा की कहानी सुन रहा था; मुझे उस लाठीचार्ज की याद हो आई, जिसमें एक नवयुवक की तिल्ली फट जाने के कारण मृत्यु हो गई थी। और मुझे उस दिन मालूम हुआ कि वह निरुपमा का पति था।

निरुपमा का गला भर आया था, थोड़ी देर तक वह मौन बैठी रही। उसने फिर कहा--"लेकिन नरेशजी, मैं कलक्टर साहब को दोष नहीं देती; वे अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे थे। असल में मेरे पति को ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी; लेकिन मैं दोष अपने पति को भी तो नहीं दे सकती, क्योंकि वे युवा थे, उनके रक्त में जोश था--जीवन था। यदि वे यह सब न कहते, तो शायद मैं उन्हें निर्जीव समझती। दोष असल में मेरे भाग्य का था। नरेशजी, आप समझ सकते हैं कि दोष मेरे पति का नहीं था और कलक्टर साहब का भी नहीं था, क्योंकि उन्होंने जो कुछ किया, वह स्वाभाविक ही था। आखिर वे कलक्टर थे, उनके ऊपर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व था। वे सरकारी नौकर थे--इतनी लम्बी तनख्वाह आखिर उन्हें मिलती किस लिए है ? उन्होंने वही किया, जिससे सरकार की प्रतिष्ठा कायम रहती। नरेशजी, यह मेरा भाग्य था।"

निरुपमा की कहानी समाप्त हो गई। मैं एकाएक बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा। निरुपमा के मुख की ओर मैंने एक बार गौर से देखा--वहाँ अहिंसा,

विवशता और इन दोनों के साथ समझदारी का मिश्रण था । "दोष मेरे भाग्य का था कलक्टर साहब सरकारी नौकर थे––इतनी लम्बी तनख्वाह आखिर मिलती किस लिए है ?"

निरुपमा ने कहा––"नरेशजी, आप से यही प्रार्थना है कि आप कलक्टर साहब से मेरी सिफारिश कर दें । आप मेरे ऊपर बहुत बड़ा उपकार करेंगे ।"

मैंने धीरे से कहा––"श्रीमती जी, मुझे दु:ख है कि आपकी सहायता करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है । मैं समझता हूँ कि आप की-सी परिस्थिति में पड़े हुए मनुष्य को धोखे में रखना अमानुषिक है, इसलिए मैं आप से बतलाये देता हूँ कि वे आपको अपने यहाँ रखने के लिए जरा भी तैयार नहीं हैं ।"

"क्यों ?"––दबी जबान में निरुपमा ने पूछा ।

"आप न पूछें, आपको जानकर दु:ख होगा ।"

निरुपमा ने एक रूखी हँसी के साथ कहा––"नरेशजी, मेरे दु:ख की आप चिन्ता न करें । इसकी मैं इतनी अधिक अभ्यस्त हो गई हूँ कि मेरे लिए अब उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया ।"

"तो फिर सुनिये, उन्हें आपके चरित्र के सम्बन्ध में शिकायत है । उनका कहना है कि अपने बच्चों को वे आपके शिक्षण में रखना ठीक नहीं समझते !"

निरुपमा चौंक उठी––"क्या कहा ?" उसका मुख पीला पड़ गया । कुछ रुक कर उसने कहा––"बात वहाँ भी पहुँच गई––नरेशजी, ठीक है ।" उसकी आँखों में आँसू आ गये, "ठीक है नरेशजी, पाप छिपाये नहीं छिपता––मैं समझ गई । पर मैं आप से एक बात और कहूँगी और फिर चली जाऊँगी । आपका समय मैंने नष्ट किया है, उसके लिए आप क्षमा करेंगे । देखिए, मैं ट्यूशन ढूँढ़ रही हूँ कीचड़ से निकलने के लिए ही । पर देखती हूँ कि गिर कर उठना बहुत कठिन है; कठिन ही नहीं, असम्भव है । शायद आप भी मुझे पतित समझते होंगे; और आप ही क्यों, मैं खुद

अपने को पतित समझती हूँ; पर आप कह दें कि इस पतन में मेरा हाथ कहाँ तक है। आप मेरी परिस्थिति पर ध्यान दें और फिर मेरे सम्बन्ध में आप अपना निर्णय दें। मुझे अकेले ही तो जीवित नहीं रहना है, मुझे और भी कई व्यक्तियों को जीवित रखना है।"

निरुपमा उठ खड़ी हुई। उसे रोकने का मुझ में साहस न था; और वह नमस्कार करके सर झुकाये हुए बाहर चली गई।

* * *

गर्मी अब जोरों के साथ पड़ने लगी थी। मिस्टर रामनाथ पहाड़ जा रहे थे। मुझे भी लखनऊ जाना था, इसलिए हम दोनों साथ ही चले और स्टेशन साथ ही पहुँचे। गाड़ी आने में देर थी, और हम दोनों प्लेटफार्म पर टहल रहे थे। एकाएक रामनाथ ने कहा—"देखो जी नरेश, उस स्त्री को देखते हो ?"

"किसको ?" कहते हुए मैंने मुड़ कर देखा। निरुपमा देवी एक नवयुवक के साथ कपूर रेस्टोराँ से आ रही थीं। उस समय निरुपमा देवी जार्जेट की बहुत सुन्दर साड़ी पहने थीं, और उनके कपड़ों से कीमती सेन्ट की महक आ रही थी। वे उस नवयुवक से घुल-घुलकर बातें कर रही थीं। कपड़ों से और ठाट से वह नवयुवक बहुत अमीर और ऊँची श्रेणी का मालूम होता था।

निरुपमा देवी हम दोनों के पास से निकलीं। एकाएक उसकी नजर हम दोनों पर पड़ गई। एक क्षण के लिए उसका चेहरा लाल हुआ और फिर पीला पड़ गया। वह कुछ ठिठकी, फिर उसने हम दोनों को नमस्कार किया। मैंने मुसकराते हुए नमस्कार का उत्तर दे दिया; पर मिस्टर रामनाथ ने अपना मुँह फेर लिया।

निरुपमा के जाने के बाद मिस्टर रामनाथ ने मुझ से कहा—"देखते हो नरेश ! मैंने क्या कहा था, है न वेश्या से गई-बीती। मुझे उस नवयुवक पर दुःख है, जो उसके जाल में फँस गया है—"

मिस्टर रामनाथ ने और क्या-क्या कहा, मुझे याद नहीं। मुझे उस

समय निरुपमा की कहानी याद हो आई, और मैंने मिस्टर रामनाथ को गौर से देखा । यह आदमी, जो दुनिया में अपने को इतना अधिक महत्त्व-पूर्ण समझता था, जो निरुपमा के शरीर बेचने पर उस पर घृणा और क्रोध प्रकट करता था, क्या उसको यह सब कहने का अधिकार था ? क्या उसने अपनी लम्बी तनख्वाह पर अपनी आत्मा तक नहीं बेच दी है ? मुझे निरुपमा के वे शब्द याद आ गये--'वे सरकारी नौकर थे--इतनी लम्बी तनख्वाह उन्हें आखिर मिलती किस लिए है ?'

और मैं आज भी परीशान हूँ । किसने शरीर बेचा--किसने आत्मा बेची--और क्यों ? मैं अपने चारों ओर देख रहा हूँ; कोई भी तो ऐसा आदमी नहीं है, जो खरीदार हो--सभी बेच रहे हैं ! और वह खरीदने वाला कौन है ?

लेकिन नहीं, मैं पहले ही कह चुका हूँ, ये सब पागल बना देनेवाली बातें हैं ।

रेल में

इंटर क्लास के उस डिब्बे में तीन बर्थें थीं और तीन मुसाफिर थे। एक ओर एक वृद्ध सज्जन बिस्तर बिछाए आराम के साथ लेटे थे। दूसरी ओर एक अधेड़ सज्जन बैठे हुए सिगरेट पी रहे थे। बीचवाले बर्थ पर एक स्त्री लेटी थी जिसकी गोद में एक बच्चा भी था।

उन अधेड़ महोदय की बगल में मैं बैठ गया। उस डिब्बे में मेरे आने से उन अधेड़ सज्जन को प्रसन्नता ही हुई क्योंकि उन्होंने बड़े तपाक के साथ मेरा स्वागत किया था।

यहाँ पर उन अधेड़ सज्जन की थोड़ी-सी हुलिया बतला देना अनुचित न होगा। उनकी मूँछ, जिस पर देखनेवाले की नजर सबसे पहिले पड़ती थी और फिर काफी देर तक वहाँ से हटने का नाम न लेती थी, काफी बड़ी, घनी और चितकबरी थी। चेहरा गोल, भरा हुआ और सुन्दर था। माथा नीचा, नाक सिरे पर गोल और आँखें चमकीली तथा छोटी-छोटी थीं जिन पर सोने की कमानी का चश्मा चढ़ा था। सर के बाल भी खिचड़ी थे पर महीन कटे थे। वे एकहरे बदन के हृष्ट-पुष्ट आदमी थे, मझोले कद के। काशी सिल्क का कुरता और महीन किनारे की महीन धोती पहिने हुए थे। चट्टियाँ बर्थ के नीचे पड़ी थीं और किश्तीदार काश्मीरी टोपी एटेची केस के ऊपर।

गाड़ी चल दी, और उस अधेड़ सज्जन से मेरी, या मुझसे अधेड़ सज्जन की, बातचीत शुरू हुई।

"आप कहाँ जा रहे हैं?" उन्होंने पूछा।

"कलकत्ता !" मैंने उत्तर दिया ।

"इतनी दूर ! मैं तो इलाहाबाद तक ही जा रहा हूँ, लेकिन आ दूर से रहा हूँ; दिल्ली से" खिड़की के बाहर देखते हुए उन्होंने कहा ।

उनकी बात का जवाब मुझे उस समय नहीं सूझा और चुप रह गया। कभी-कभी सोच लिया करता हूँ कि क्या उस बात का कोई उत्तर हो भी सकता था ।

"आप क्या करते हैं ?" कैंची सिगरेट की डिब्बी जिसमें केवल दो सिगरेटें बाकी थीं, मेरे सामने बढ़ाते हुए उन्होंने पूछा ।

"धन्यवाद, मैं सिगरेट नहीं पीता । हाँ, मैं यों ही तफरीहन सफर किया करता हूँ !"

डिब्बी से एक सिगरेट निकाल कर उन्होंने बड़ी इतमीनान के साथ जलाई । इसके बाद मेरे मुँह पर सिगरेट का धुआँ फेंकते हुए उन्होंने कहा, "आप तो पढ़े-लिखे हुए आदमी मालूम होते हैं !"

मैं मुसकराया, "जी हाँ, आपका कयास गलत नहीं है । लेकिन आपने यह कैसे समझ लिया कि पढ़े-लिखे आदमी आवारा हो ही नहीं सकते !"

इस बार उन्होंने आश्चर्य से मुझे सिर से पैर तक देखा "तो फिर आपके पास जमीन्दारी वगैरह कुछ होगी ?"

"जी नहीं !" और मैं उनके अगले प्रश्न की प्रतीक्षा करने लगा ।

"तो फिर आपके पिता अमीर होंगे ?"

प्रश्नों से अधिक मजेदार उस समय प्रश्नकर्त्ता महोदय लग रहे थे । मैंने बहुत गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "साहब, मेरे पिता स्वर्गलोक में हैं और स्वर्गलोक में अमीरी-गरीबी का कोई सवाल उठता है, इस बात की मैंने तसदीक नहीं की और न तसदीक करने का फिलहाल कोई इरादा ही है ।"

मेरे जवाब का मतलब उन्होंने समझ लिया, उसके आगे समझना उन्होंने शायद अनावश्यक समझा क्योंकि उन्होंने फिर पूछा, "तो फिर आप अपने बीबी-बच्चों को किस तरह सपोर्ट करते हैं ?"

27271५२ (२३

"मेरे बीबी ही नहीं है इसलिए बच्चों का कोई सवाल ही नहीं उठता।"

वे सज्जन मानो चौंक उठे, "एँ! अभी तक आपका विवाह नहीं हुआ ?"

"जी हाँ, और विवाह करने की कोई आवश्यकता भी मैंने नहीं समझी !"

उन सज्जन ने मुझे बड़े गौर से देखा। फिर कुछ देर तक कुछ सोचा और अन्त में बोले, "साहब आप जवान आदमी हैं और मैं तो कहूँगा कि आप अभी तक लड़के हैं। आप जब कहते हैं कि विवाह करने की आपने कोई आवश्यकता ही नहीं समझी तो मुझे बड़ा ताज्जुब होता है। अपने नौजवानी की मर्दानगी पर मुझे शक होने लगता है और आप लोगों पर किसी कदर अफसोस भी होता है ! मुझे देखिए कि इस उम्र में मैंने अभी तीन साल हुए दूसरा विवाह किया। एक बात आपको बताऊँ कि विवाह करने से फायदे अधिक हैं नुकसान कम। जिन्दगी के सुखों को बिना विवाह किये मनुष्य जान ही नहीं सकता। आपकी बीबी आपकी हर तरह से सेवा करती है, आपकी देख-भाल करती है। आप अनुभव करते हैं कि दुनिया में आपकी कोई परवाह करनेवाला है, आपका कोई पूरा हमदर्द है। बीबी के रहने पर आप कह सकते हैं कि कोई आपका अपना भी है, आपके दुख-दर्द में कोई शरीक है। आप अगर विवाह कर लें तो आपका घूमना-घामना बन्द हो जाय, आप स्थिर होकर एक जगह बैठ सकेंगे, जी जमा कर कोई काम आप कर सकेंगे, अपने जीवन को आप सफल बना सकेंगे। आपका लक्ष्यहीन जीवन कोई अच्छी चीज तो नहीं है।"

"हूँ !" मैंने कहा।

इसी समय बीच वाले बर्थ से बच्चे के रोने की आवाज आई और उन सज्जन ने उठ कर बच्चे को गोद में ले लिया। वह करीब डेढ़ वर्ष का सुन्दर बालक था, हाथ-पैर गोल-मटोल—मुख जापानी बबुए का-सा। वे सज्जन बच्चे को गोद में लेकर "आँ-आँ—ऊँ-ऊँ—राजा बेटा—" कह कर चुप कराने लगे। साथ ही बीच वाले बर्थ पर जो स्त्री लेटी थी

और जो उन अधेड़ सज्जन की पुत्री मालूम होती हुई भी उनकी पत्नी थी उठकर बैठ गई ।

वह स्त्री अनिद्य सुन्दर थी, इस बात को कहना सत्य को बड़े भद्दे ढंग से प्रकट करना है। उसकी अवस्था अट्ठारह या उन्नीस वर्ष की रही होगी। कुन्दन का-सा रंग, एकहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखें और नुकीली नाक। वह ऐसी स्त्री थी जिसे कोई भी सिनेमा कम्पनी अपनी अभिनेत्री बनाने को तैयार हो जाती, और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि कोई भी अच्छा चित्रकार उसे अपना माडल बनाने में अपना सौभाग्य समझता। वे अधेड़ सज्जन बच्चे को बहला रहे थे, वह स्त्री अपने अस्त-व्यस्त वस्त्र ठीक कर रही थी, मैं बड़ी तन्मयता के साथ उस स्त्री को देख रहा था और गाड़ी पचास मील फी घण्टा की रफ्तार से चली जा रही थी ।

वह स्त्री सुव्यवस्थित होकर बैठ गई, बच्चा चुप हो गया और वे सज्जन मेरी बगल में मय बच्चे के आकर जम गए । बातचीत फिर आरम्भ हो गई ।

"आप कौन जात हैं ?" उन्होंने पूछा ।

"आदमी !" बहुत गम्भीर होकर मैंने कहा ।

"यह तो मैं भी जानता हूँ। मैंने जात पूछी है।"

"मेरी कोई जात नहीं है—सिर्फ इतना जानता हूँ कि आदमी हूँ ।"

"आप अजब तरह के आदमी हैं !"

'आदमी' शब्द पर जोर देकर कुछ मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "आप कहाँ तक पढ़े हैं ?"

"एम० ए० पास किया है ।"

वे बच्चे को खिलाने लगे, बच्चा अब हँस रहा था ।

थोड़ी देर तक उनके प्रश्न की प्रतीक्षा करने पर जब मैं निराश हो गया तो मैंने समझ लिया कि प्रश्न करने की अब मेरी बारी है। मैंने पूछा, "आप क्या करते हैं ?"

"मैं कपड़े का व्यापारी हूँ ।"

"आपकी उम्र क्या होगी ?"

"यही करीब पैंतालीस वर्ष !"

"आप किस शहर के रहने वाले हैं ?"

"मेरठ के।"

"आपके मकान में कितने चूहे हैं ?" मैंने यह प्रश्न बड़ी गम्भीरता-पूर्वक पूछा। मेरे प्रश्न को सुनकर उनकी पत्नी हँस पड़ीं। उन्होंने कुछ रुष्ट होकर कहा--"जनाब आप मजाक कर रहे हैं ?"

अपनी हँसी को दबाते हुए मैंने कहा, "कतई नहीं, साहेब, मैं प्लेग के सम्बन्ध में कुछ अध्ययन कर रहा हूँ इसीलिए यह सवाल किया था। अगर आपको कुछ बुरा लगा हो तो मैं माफी माँग लेता हूँ। अच्छा साहेब आपका नाम क्या है ?"

"कालीशंकर !"

"आपका नाम कालीशंकर क्यों पड़ा ?" मैंने उनकी पत्नी की ओर देखा, वह मुस्करा रही थीं।

"मेरे पिता ने यह नाम रक्खा है !"

"आपके पिता ने यह नाम क्यों रक्खा !"

इस बार उनकी पत्नी जोर से हँस पड़ीं।

उन्होंने मेरे इस प्रश्न का उत्तर देना शायद अनुचित समझा क्योंकि वे मेरी ओर से मुँह फेर कर बच्चे को खिलाने लगे।

बच्चा प्यारा था--मुझसे न रहा गया। झाबे से मैंने केले की फलियाँ निकालीं और बच्चे को मैंने उनकी गोद से ले लिया। बीच-बीच में बात-चीत भी हो जाया करती थी।

मैं बच्चे को खिला रहा था और बीच-बीच में उनकी पत्नी को भी देख लेता था। सौन्दर्योपासना मेरा एक बहुत बड़ा गुण है, यद्यपि लोग उसे बहुत बड़ी कमजोरी कहने को तैयार हैं, और उनकी पत्नी का सौन्दर्य कवि के शब्दों में ऐसा सौन्दर्य था जिसे बार-बार देख कर तृप्ति नहीं मिलती। पता नहीं उनकी पत्नी अपने बच्चे को देख रही थी, या अपने पति को देख

रही थी, या फिर मुझको ही देख रही थी, पर उसका मुख हम लोगों की ओर था ।

और "तन्मयता" किस अवस्था का नाम है, यह मुझे उसी दिन मालूम हुआ । मेरी आँखों के आगे से महाशय कालीशंकर निकल गए, गाड़ी का वह डब्बा निकल गया, मेरी गोद वाला बच्चा भी निकल गया--सिर्फ मेरे सामने वाली स्त्री ही रह गई । मैं न सोच रहा था, न सुन रहा था--केवल देख रहा था । और पता नहीं मेरी यह तन्मयता की अवस्था कितनी देर तक रही, पर मैं होश में आ गया और होश में आया तब जब मैंने एकाएक यह अनुभव किया कि कोई व्यक्ति मेरे हाथ से जबरदस्ती कोई चीज छीन रहा है । मैं चौंक उठा । मैंने देखा महाशय कालीशंकर मेरे हाथ से अपने बच्चे को छीन रहे हैं । उस समय उनकी मुद्रा देखने काबिल थी । मुँह लाल, हाथ-पैर काँप रहे थे और भौंह सिकुड़ी हुई; आँखों की बाबत कुछ नहीं कह सकता क्योंकि एकाएक अपने अपराध की गुरुता मुझे मालूम हो गई थी और उनकी आँखों से अपनी आँखें मिलाना मेरे लिए असम्भव हो गया था । उन्होंने बच्चे को मेरे हाथों से नहीं छीना । वे उठे और अपनी पत्नी की बगल में अकड़ कर बैठ गए । वहाँ बैठ कर उन्होंने इस प्रकार मुझे देखा मानो वे मुझको खा जायेंगे ।

उस समय मेरी सज्जनता ने मुझे धिक्कारना और अपनी इच्छा के प्रतिकूल मुझे उन अधेड़ सज्जन की पत्नी पर से दृष्टि हटा कर खिड़की के बाहर देखना पड़ा । फिर भी जब-जब मुझमें वाला कलाकार मुझपर विजय पाता था तब-तब मैं उधर अपनी आँखें फेर ही लेता था, और दुर्भाग्यवश वहीं, उनकी पत्नी का सुन्दर मुख दिखने के स्थान पर उनकी लाल-लाल आँखों से मेरी आँखें मिल जाती थीं । पर मुझे यह पता था कि उनकी पत्नी मुझे देख रही है । और मुसकरा रही है ।

दो घण्टे बीत गए, और उन दो घण्टों में फिर उन सज्जन से मेरी कोई बात नहीं हुई । एकाध बार बात चलाने की कोशिश भी की पर मैं असफल रहा । मुझे अपनी मूर्खता पर दुःख हो रहा था । एकाएक गाड़ी धीमी पड़ने

लगी। खिड़की के पास जाकर मैंने देखा, इलाहाबाद स्टेशन आ गया। गाड़ी रुक गई, और मैं गाड़ी से उतर कर प्लेटफार्म पर टहलने लगा।

बच्चा अपनी पत्नी की गोद में देकर वे सज्जन भी गाड़ी से उतरे। कुलियों से उन्होंने असबाव उतरवाया। और फिर सब के पीछे उनकी पत्नी गाड़ी से उतरी।

वे अधेड़ सज्जन कुलियों के सिर पर असबाव रखवा कर चले। एकाएक उनकी पत्नी घूम पड़ी, वह मेरे सामने आई। मुसकराते हुए उसने बच्चा मेरे हाथ में दे दिया। एक खिलौने वाला पास से जा रहा था——मैंने उस खिलौनेवाले को बुलाकर कुछ खिलौने बच्चे के हाथ में दे दिए। इतने ही में उन अधेड़ सज्जन ने पीछे देखा——लपक कर वे पीछे आए, अपनी पत्नी को डाँट कर उन्होंने कहा, "चलती हो कि नहीं ? देर हो रही है !"

बच्चा मैंने उनकी पत्नी को दे दिया। इसके बाद उसने अपने पति की ओर देखा। कुछ मुसकराकर वह मेरी ओर मुड़ी, हाथ जोड़ कर उसने मुझे नमस्कार किया। मैंने भी नमस्कार का उत्तर दे दिया। और वह घूम कर अपने पति के पीछे-पीछे चल दी।

इसी समय गाड़ी ने सीटी दी, और मैं कुछ भूला-सा और कुछ भ्रमा-सा गाड़ी में आकर बैठ गया। गाड़ी में बैठ कर मैं कुछ सोचने लगा——वह अब याद करने पर भी याद नहीं आ रहा।

कुँवर साहब का कुत्ता

अगर आपके पास रुपया है, तो आप बड़े मजे में कुत्ता पाल सकते हैं, कुत्ता ही क्यों, घोड़ा, भालू, शेर सभी कुछ पाल सकते हैं। यही नहीं, बल्कि आप अपने मकान को जू बना सकते हैं और आप की ओर कोई उँगली तक नहीं उठा सकता। मानी हुई बात है कि मुझे हरीश का कुँवर साहब और उनके कुत्तों को गालियाँ देते हुए गाँधीवाद से लेकर साम्यवाद तक के सिद्धान्तों पर घण्टे भर तक व्याख्यान देना बुरा ही लगा। मैं तो कहता हूँ कि अगर आदमी हो, तो निरंजन-सा हो। निरंजन को आप नहीं जानते, दुबला-पतला, लम्बा-सा नवयुवक है, तीन साल हुए बी० ए० पास किया था! पर अभी तक बेकार है। संतोषी आदमी है, साथ ही अथक परिश्रम करने में विश्वास करता है। एक दिन कुँवर साहब के यहाँ से लौट कर--कुँवर साहब के यहाँ वह नौकरी की तलाश में गया था--उसने मुझसे बड़ी गम्भीरतापूर्वक कहा था--"भाई परमेश्वरी, अच्छा होता यदि भगवान ने मुझे कुँवर साहब का कुत्ता बनाकर पैदा किया होता। ऐसी हालत में मुझे तीन समय अच्छा-से-अच्छा खाना तो मिलता, गोश्त, दूध, बिसकुट, सभी कुछ। और फिर एक नौकर, एक मकान और देख-भाल करने के लिए एक डाक्टर भी मैं पाता। और सबसे बड़ी बात यह है कि मैं मौका-बेमौका कुँवर साहब तथा कुँवरानी साहबा का मुँह भी चाट लेता।" निरंजन के अंतिम वाक्य पर मैंने उसे डाँटना चाहा; पर निरंजन की उम्र का खयाल करके चुप ही रह जाना पड़ा। कुँवर साहब शौकीन रईस हैं, और उनके

शौकों में मुख्य स्थान कुत्तों के शौक को दिया जा सकता है। चूहे के बराबर से गधे के बराबर तक के कुत्ते आपको उनके यहाँ मिलेंगे, हर रंग के और हर शक्ल के। यह बतला देना अनुचित न होगा कि आदमियों की भाँति कुत्ते भी विलायती ही अच्छे समझे जाते हैं, और इसलिए आप ताज्जुब न करें, जब मैं आप से यह कहूँ कि कुँवर साहब के सभी कुत्ते सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान को पवित्र करने आये थे। इन कुत्तों की संख्या करीब चालीस थी, जिनमें प्रत्येक कुत्ता लगभग एक हजार का था।

कुँवर साहब सज्जन पुरुष हैं, मेरे घनिष्ठ मित्र हैं और साथ ही स्वभाव के अच्छे हैं। उनका आग्रह था कि मैं उनके यहाँ कुछ दिनों के लिए ठहरूँ। बड़े आदमी का निमन्त्रण पाने के लिए मैं सदा लालायित रहता हूँ। उस मौके का चूकना मैंने मुनासिब न समझा। उन दिनों कुँवर साहब के अन्य कई मेहमान आए थे, हर एक का मिजाज और हर एक का रहन-सहन अलग-अलग था। कुछ रईस थे और कुछ रईसों के कृपापात्र थे। दिन भर गपबाजी होती थी और खेल होते थे।

संध्या के समय चाय पीकर हम लोग बैठे ही थे कि कुत्तों पर बातचीत चल पड़ी। कुँवर साहब यदि कवि नहीं हैं, तो कविहृदय अवश्य हैं। आकाश की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, —"उफ कुत्ता! इतना स्वामिभक्त प्राणी संसार में नहीं मिलेगा। पशु है, फिर भी वह मनुष्य से कहीं ऊँचा है। उसमें दागा, फरेब, कृतघ्नता, ये कभी न मिलेंगे। उसकी मूक स्वामिभक्ति अद्वितीय है।" और कुँवर साहब ने अपने अलसेशियन के सिर पर हाथ फेरा। "मैं सच कहता हूँ कुत्ते के बराबर मित्र संसार में कोई नहीं है। दुनिया में जब चारों ओर सूनापन मालूम होता है, प्रत्येक ओर नजर उठा कर देखने पर भी जब ऐसा कोई मनुष्य नहीं दिखलाई देता, जिसे हम अपना कह सकें, जिस पर हम विश्वास कर सकें, उस समय कुत्ता ही हमें अपने सब से निकट दिखलाई देता है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इंसान सब से अधिक स्वार्थी है, नमक हराम है।"

कुँवर साहब की बात समाप्त होते ही उनकी बगल में बैठे हुए दूसरे सज्जन बोल उठे––"इसमें क्या शक है ! वाकया यह है कि इंसान सबसे अधिक नमकहराम है । लाख उसका हित कीजिए, लेकिन वह अपनी आदत से बाज़ नहीं आता । अभी साल भर हुआ, एक दिन मैं जरा कुछ ज्यादा पी गया, आप जानते ही हैं कि कभी-कभी ज्यादा हो ही जाया करती है, और जनाब ज्यादा पी जाने के बाद मैंने अपने खिदमतगार को गुस्से में कुछ मार दिया। कोई तलवार-बन्दूक तो मारी ही न थी, केवल हाथ से मारा था, लेकिन वह साला मरियल खिदमतगार, मेरी मार बरदाश्त न कर सका, और उसे कुछ चोट आ गई । अब जनाब, उस साले का मैंने इलाज करवाया । सब कुछ उसके लिए किया, लेकिन इन कांग्रेसवालों के बरगलाने से वह साला पुलिस में रिपोर्ट करने जा रहा था । वह तो यों कहिये कि मैं था, मैंने साफ-साफ कह दिया कि अगर थाने तक पहुँचने की इत्तिला मुझे मिली, तो खाल खिचवा लूँगा । और, फिर उसकी क्या मजाल जो वह थाने जाता । वरना और कोई दूसरा होता तो उस खिदमतगार ने उसे मुसीबत में डाल दिया होता ! अब जरा गौर करें कि मेरा खिदमतगार पुश्त-दर-पुश्त से मेरे नमक पर पला था । अगर मैंने उसे थोड़ा-सा मार ही दिया, और वह भी जब मैं कुछ ज्यादा पी गया था, तो क्या उसे थाने की बात सोचनी चाहिए ? लेकिन क्या किया जाय, नमकहरामी तो इंसान की नस-नस में भरी है ।"

दूसरे सज्जन के बाद तीसरे सज्जन ने अपना किस्सा सुनाया,––"भाई मेरे समझ में नहीं आता कि क्या किया जाय । आए दिन ही इन आदमियों की नमकहरामी के सबूत मिलते रहते हैं । अभी महीना भर हुआ कि कमिश्नर साहब मेरे इलाके में आए। उन दिनों जुताई हो रही थी और बेगारी लगे हुए थे । जरा गौर कीजिए कि कमिश्नर साहब ऐसे बड़े मेहमान की खातिर करना कोई साधारण बात तो है नहीं । रियासत के सब अमले कमिश्नर साहब की खातिरदारी में लगे थे और इसका नतीजा यह हुआ कि उस दिन बेगारियों को चबेना देना भूल गये ।

अब आप ही समझिए कि अगर एक दिन बेगारियों को चबेना नहीं मिला, तो वह मर न जाते, और फिर कमिश्नर साहब की खातिरदारी की वजह से चबेना देना भूले थे ! तो जनाब जब कमिश्नर साहब चलने लगे, तो एक लौंडा उन बेगारियों के बीच से निकल कर कमिश्नर साहब के सामने खड़ा हो गया और ऐंड़ी-बैंड़ी शिकायतें करने लगा। वह तो मेरा मामला था, कमिश्नर साहब ने सुनी अनसुनी कर दी और चले गए।"

"इसके बाद क्या हुआ ?"––दबी जबान से मैंने पूछा।

"होता क्या, साले पर वह मार पड़ी कि पन्द्रह दिन तक चारपाई सेंकता रहा। इसके बाद बेदखल कर दिया। अब भीख माँगता होगा, लेकिन मुझे तो यह बतलाना था कि इंसान कितना नमकहराम होता है।"

जितने लोग वहाँ बैठे थे सब-के-सब इन बातों सी ताईद करते थे। मुझसे न रहा गया, मैंने कुछ झल्ला कर कहा––"जी हाँ, नमकहरामी तो इंसान के हक में पड़ी है, लेकिन मुसीबत तो यह है कि भगवान ने प्रत्येक मनुष्य को एक प्रकार का ही हाड़-मांस दिया है, उसको भावनाएँ दी हैं, उसे अनुचित-उचित का ज्ञान दिया है। जब आप अपने को उस खिदमतगार या उस बेगारी के स्थान में रक्खें, तब आप को उसके दु:ख-दर्द का पता लगे। आप अपनी बराबरी वाले, बल्कि किन्हीं बातों में आप से कहीं अधिक श्रेष्ठ मनुष्य को रोटी के टुकड़े का गुलाम बनाना चाहते हैं, यही आप गलती करते हैं। आप ही लोगों के कारण साम्यवाद का प्रचार. . ."

एकाएक कुँवर साहब ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे सचेत कर दिया, नहीं तो मैं न जाने क्या-क्या मैं कह जाता। मेरी उस उस बात से वहाँ बैठे हुए लोगों में निस्तब्धता छा गई। लोग एक-दूसरे की ओर देखने लगे। कुँवर साहब ने कहा––"परमेश्वरी बाबू हम लोगों का मतलब ठीक तरह से नहीं समझे, इसीलिए वे क्रोध में कुछ उचित-अनुचित कह गए। आप लोग उनकी बात का बुरा न मानियेगा।"

किसी ने इस पर कुछ नहीं कहा, सारा वातावरण एकाएक शुष्क

तथा नीरस हो गया था। लोग वहाँ से उठ कर इधर-उधर टहलने चले गए, मैं अकेला सोचता रह गया।

मैं क्या सोचता रहा, मुझे याद नहीं; कितनी देर तक सोचता रहा, यह भी याद नहीं; पर इतनी याद है कि कुँवर साहब ने बड़े कोमल स्वर में मुझे सचेत करते हुए कहा--"परमेश्वरी बाबू ! मैं जानता हूँ कि मेरे मित्रों के दृष्टिकोण से आप सहमत न होंगे, जब कि स्वयं मैं ही उस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूँ; पर उस हँसी-खुशी के वातावरण को नष्ट करके क्या आपने अच्छा काम किया ? क्या आप समझते हैं कि आप यह सब कुछ कह कर उन लोगों के दृष्टिकोण को प्रभावित कर सके ?"

कुँवर साहब की बात में सार था, इसका मैंने अनुभव किया। अपनी तेजी पर मुझे पश्चात्ताप हुआ। मैंने कुँवर साहब से कहा--"हाँ इतना मानता हूँ कि मुझसे गलती हो गई, और उसके लिए मुझे खेद है। पर फिर भी आप स्वयं ही समझ सकते हैं कि मुझे उनकी बातों पर बुरा लगना ही चाहिए था, और मैं देवता तो हूँ नहीं कि मुझे क्रोध न आवे।"

मुसकराते हुए कुँवर साहब ने कहा--"आप ठीक कहते हैं परमेश्वरी बाबू ! मनुष्य मनुष्य है और प्रत्येक मनुष्य बराबर है। आपका क्रोधित हो जाना स्वाभाविक ही था।" इतना कह कर कुँवर साहब ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे उठा लिया--"चलो, थोड़ा-सा टहल ही आवें।"

कुँवार का महीना था, संध्या सुहावनी थी। कुँवर साहब साम्यवाद के सिद्धान्तों का समर्थन कर रहे थे, और उनके पीछे-पीछे दो सिपाही बन्दूक लिए हुए चल रहे थे। सूर्यास्त हो रहा था, अँधेरा हो रहा था, और आगे-आगे कुँवर साहब का अलसेशियन रास्ता दिखलाता हुआ चल रहा था।

खेतों को और बागों को पार करते हुए हम दोनों गाँव की सघन आबादी में पहुँचे। देहाती, कुँवर साहब को देख कर खड़े हो जाते और हाथ जोड़ कर 'अन्नदाता की दुहाई' बोलते थे, और कुँवर साहब मुझसे

इस प्रकार बातें करते चल रहे थे कि मानो उन देहातियों का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

काफी दूर तक टहल कर हम लोग लौटे। उस अलसेशियन का साथ कहाँ छूट गया, यह नहीं याद; पर जब हम दोनों गाँव में लौटे, तो एक विचित्र दृश्य दिखलाई पड़ा।

*   *   *

मैकू धोबी कुँवर साहेब के इलाके में ही पला और बसा था। बुड्ढा-सा आदमी, सारे बाल सफेद हो गये थे। उसकी हड्डी-हड्डी गिनी जा सकती थी और लोगों ने उसे सदा एक लँगोटी ही लगाए देखा।

मैकू का खानदान काफी बड़ा था, उसकी बीबी और चार बच्चे और एक गधा। गधे के हौसले बढ़े-चढ़े थे, मैकू अपने बच्चों के समान ही उस गधे को भी रखता था। वही गधा मैकू की जीविका का सहारा था। रोज सुबह उस पर लादी लादी जाती थी। रोज शाम को लादी वापस लाता था। दिन भर वह घाट पर किलोलें करता था।

उस दिन लादी खुलने के बाद मैकू ने गधे को बाँध दिया था; पर उसने अपनी रस्सी तुड़ाई और चहलकदमी की ठानी। एकाएक कुँवर साहब के अलसेशियन की नजर उस गधे पर पड़ी। या तो अलसेशियन को सन्ध्या के समय गधे की चहलकदमी करने की अनधिकार चेष्टा पर बुरा लगा, या फिर उसने गधे से कुछ खेल करना चाहा। कारण जो कुछ रहा हो; पर इतना निश्चित है कि कुँवर साहब के कुत्ते ने गधे का पीछा किया। गधा कुछ दूर तक भागा और एकायक रुक गया। उसे शायद यह याद हो आया कि संसार में सब को शान्तिपूर्वक रहने का समानाधिकार प्राप्त है, और भागना कायरता है। कायर को संसार में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।

गधे ने अलसेशियन का सामना किया, सीधे-सादे ढंग से।

उसकी मुद्रा साफ कह रही थी—"म्याँ, क्यों सताते हो, हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। आखिर तुम्हारा इरादा क्या है ? तुम्हारे मालिक कुँवर

साहब हैं, होंगे । अपने राम को इसकी कोई चिन्ता नहीं । अपने राम तुमसे जरा भी दबने वाले नहीं ।"

गधा तो गधा--अलसेशियन को उसका यह व्यवहार तनिक भी अच्छा नहीं लगा। वह कुँवर साहब का कुत्ता था, जर्मनी से आया था। अहिंसा पर उसे रत्ती भर विश्वास न था, साथ ही अपने अधिकार का उसे गर्व था। गधे के इस अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रभाव उस अलसेशियन पर ऐसा ही पड़ा, जैसा कांग्रेस-वालण्टियर के बैठ जाने का प्रभाव लाठी-चार्ज के लिए तैयार पुलिस वाले पर पड़ता। उसने गधे पर धावा बोल दिया।

पर गधा तो आदमी है नहीं, उसका सत्याग्रह दुराग्रह में परिणत हो गया। इसके पहले कि अलसेशियन के तेज दाँत उसके शरीर में गड़ें, वह घूमा बिजली की भाँति और उसने अपनी दुलत्ती का पूरा प्रयोग किया। एक भारी गुर्राहट के साथ कुत्ता धराशायी हुआ, आँखें बन्द और मुँह से खून निकलता हुआ। गाँववाले दौड़ पड़े, शोर मच गया कि मैकू के गधे ने कुँवर साहब के कुत्ते को मार डाला।

जब हम लोग लौटे, तब अलसेशियन अन्तिम साँस ले रहा था। कुँवर साहब की आवाज सुनते ही अलसेशियन ने आँखें खोलीं, एक बड़ी ही करुण और कातर दृष्टि से उसने कुँवर साहब को देखा, और फिर सदा के लिये आँखें बन्द कर लीं।

गधा वहीं पर खड़ा था, अपनी विजय पर छाती फुलाए। कुँवर साहब ने लोगों से किस्सा सुना, खिदमतगार से उन्होंने बन्दूक ली, और दो गोलियाँ उन्होंने गधे के मत्थे में दाग दीं। गधा गिर गया। नौकरों से कुत्ता उठवाकर वे अपने महल की ओर चले गए, मैं वहीं रह गया।

उस समय मैंने मैकू को देखा, मैकू को ही नहीं, उसकी बीबी को, उसके चार बच्चों को। गधे की मृत्यु का समाचार सुन कर सब-से-सब बेतहाशा भागते हुए आये--गधे को घेरकर सब-के-सब खड़े हो गए। वे

रो रहे थे, सब-के-सब बुरी तरह रो रहे थे, मानो उनका कोई आत्मीय मर गया हो। उस रोज मैकू के यहाँ खाना नहीं बना।

मैं लौटा। कुँवर साहब और उनके मेहमान मैदान में बैठे थे। लोगों के सामने शरबत के गिलास थे, कुँवर साहब बोल रहे थे और उनका सेक्रेटरी लिख रहा था —"पन्द्रह सौ रुपया भेजा जा रहा है। जिस अलसेशियन का फोटो आपने भेजा था, उसे खरीद कर भेज दें।"

तिजारत का नया तरीका

मुंशी उलफतराय के शराब के नशे में तिमंजिले से उड़ने की कोशिश करने पर वहाँ से गिरकर मर जाने की सूचना तार द्वारा जिस समय उनके एक-मात्र सुपुत्र तथा उत्तराधिकारी मुंशी खुशबख्तराय उर्फ मिस्टर के० राय के पास आई उस समय वे एक एंग्लोइण्डियन गर्ल के कारण एक टामी से पिटने के बाद अस्पताल से मरहम-पट्टी करवा कर अपने कमरे में दर्द से कराह रहे थे ।

इतवार का दिन था । मैं अपने मित्रों के साथ बैठा हुआ ब्रिज खेल रहा था । नौकर ने आकर इत्तला दी कि मिस्टर के० राय ने मुझे सलाम भेजा है । और, मुझे उठना ही पड़ा । वहाँ से उठना कुछ अखरा अवश्य; पर करता क्या, खुशबख्तराय मेरे सब से घनिष्ठ मित्र थे ।

मुझे देखते ही खुशबख्तराय ने तार मेरे सामने फेंक दिया । तार मैंने पढ़ा, मुख कुछ गम्भीर हो गया, स्वर कुछ भारी; मैंने कहा--"अरे दोस्त मुझे सख्त अफसोस है ।"

एक हल्की मुस्कराहट खुशबख्तराय के मुख पर आई--"अफसोस की कोई ऐसी खास बात तो नहीं है । जो होना था वही हुआ; आखिर बाबूजी को मरना तो था ही, बीमार होकर महीनों चारपाई पर कराह कर तिल-तिल कर मरने की जगह कुछ क्षणों में ही उनके प्राण निकल गये, यह उनके लिए ही अच्छा हुआ ।"

मैंने कहा--"यह तो ठीक है; पर तुम अनाथ हो गये--सारा

उत्तरदायित्व अब तुम्हारे ऊपर आ पड़ा। पिता की मृत्यु तो लड़के के लिए बहुत बड़ी विपत्ति है।"

पर खुशबख्तराय पर उसका भी कोई असर न हुआ--"ठीक कहते हो; पर किया क्या जाय। आखिर एक दिन तो घर का उत्तरदायित्व मुझ पर आना ही था--कल की जगह वह आज मुझ पर आ गया। और देखो सुरेश, उत्तरदायित्व एक अयोग्य आदमी से उतर कर योग्य आदमी पर आ गया है, यह भी कुछ बुरा नहीं है।"

खुशबख्तराय ने जो कुछ कहा, उसमें सत्य का कुछ अंश अवश्य था। मुंशी उल्फतराय ने अपने पिता से दो गाँव सोलह आने, एक बड़ी हवेली, एक फिटन और पन्द्रह हजार रुपये नकद पाये थे। अपने बीस वर्ष के शासन-काल में उनके दोनों गाँव बिक गये थे, पन्द्रह हजार रुपया उड़ गया था तथा फिटन टूट गई थी। पर मुझे इसमें शक था कि उल्फत-राय और खुशबख्तराय इन दोनों में अधिक योग्य कौन है।

मैं एक कुरसी पर बैठ गया सर झुकाये हुए--उसी तरह जिस तरह कोई भी मातमपुर्सी करनेवाला बैठता है। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद खुशबख्तराय ने कहा--"भाई सुरेश, मैं समझता हूँ कि मुझे घर जाना चाहिए। और तुम देखते हो कि मैं उठने के काबिल नहीं हूँ--इसीलिए तुम्हें बुलाया है कि तुम मेरे घर तक मुझे पहुँचा दो।"

यह बात मेरी समझ में जरा कम आई, मैंने कहा--"भाई, देखो यूनिवर्सिटी का अभी बहुत काम-काज करना है, फिर आज शाम को मिस...का डांस है और कल लोफर्स मूनलाइट में बोटिंग क्लब की बैठक है और परसों है--हाँ स्टेशन तक चल कर तुम्हें गाड़ी पर लाद अवश्य दूँगा।"

पर खुशबख्तराय को उस समय तुलसीदास की एक चौपाई याद आ गई, जो मैंने उनसे दस रुपये माँगने के समय--ये दस रुपये मैं ब्रिज में हारा था और अगर उसी समय मैं न दे देता तो मेरी इज्जत जाती रहती, और दुर्भाग्यवश मेरे पास रुपये थे नहीं--उनको सुनाई थी और

जिसको सुनते ही उन्होंने दस रुपये का नोट मुझे दे दिया था। उन्होंने मेरे ही स्वर में चौपाई पढ़ी--

"धीरज धर्म मित्र औ नारी
आपत काल परखिये चारी।"

इस चौपाई को सुनते ही मैं निरुत्तर हो गया। मुझे उनके साथ उनके घर तक जाना ही पड़ा।

* * *

मुंशी उल्फतराय की बीबी अथवा यों कहिये कि मिस्टर के० राय की माता का देहान्त बहुत दिन पहले हो चुका था, और खुशबख्तराय की बीबी अपने मायके में थी। घर में मुंशी उल्फतराय की मृत्यु पर रोनेवालों में सिवा एक चमारिन के, जिसको पाँच वर्ष पहले मुंशी उल्फतराय ने घर में डाल दिया था, और कोई न था, और वह चमारिन भी मुंशी उल्पतराय की मृत्यु पर रो रही थी, या उस घर से अपने निकाले जाने की आशंका पर रो रही थी, यह कहना कठिन है।

मैं दूसरे दिन सुबह ही लौट आया और अपने काम-काज में लग गया। हाँ खुशबख्तराय की अनुपस्थिति मुझे ही क्या, हम लोगों की पार्टी को बुरी तरह अखर रही थी; पर करते क्या, मजबूरी थी। इतना निश्चय था कि तेरह दिन तक वे किसी तरह नहीं आ सकते।

और तेरह दिन भी बीत गए। मुंशी खुशबख्तराय तो नहीं आए। उनका एक पत्र अवश्य आया। उसमें उन्होंने लिखा था कि जायदाद का हिसाब वे समझ रहे हैं, अभी कुछ दिन घर में और ठहरना होगा।

यह घटना जनवरी की थी। फरवरी आया और निकल गया, मार्च आया और निकल गया। एम० ए० की परीक्षा शुरू होने वाली थी, हम लोगों की पढ़ाई-लिखाई जोरों पर थी। एक दिन क्या देखते हैं कि मिस्टर के० राय का ताँगा बोर्डिंग के फाटक पर रुका। दौड़ कर हम लोगों ने उनका स्वागत किया, बहुत दिनों से बिछुड़े हुए मित्र गले मिले।

सुचित होकर जब मिस्टर खुशबख्तराय बैठे, तब मैंने उनसे पूछा—"कहो भाई, क्या इस साल परीक्षा देने का विचार नहीं है ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

खुशबख्तराय मुसकराये—"परीक्षा देकर क्या करूँगा ? एम० ए० पास करके कौन-सी नौकरी मेरे वास्ते रक्खी है ? चालीस-पचास रुपये की क्लर्की से तो भूखे मरना अच्छा है ।"

"तो फिर करोगे क्या ?"

एक अजीब शान के साथ मिस्टर खुशबख्तराय ने अपनी जेब से अपना पर्स निकाल कर अपने सामने रख लिया—"हम करेंगे क्या ? तिजारत ! जनाब जो हवेली मेरे वालिद साहब ने मेरे वास्ते छोड़ी थी, वह भी कर्ज से लदी हुई थी। बीस हजार में मैंने वह बेच दी। बीस हजार में से दस हजार तो कर्ज वाले ले गए—और दस हजार में से पाँच हजार मेरी बीबी ले गई। रह गए पाँच हजार, सो जनाब वह मेरे पर्स में हैं, तिजारत करने निकला हूँ ।"

थोड़ी देर तक चुप रहकर उन्होंने फिर कहा—"और सुरेश, तिजारत से ही आदमी अमीर हो सकता है। नौकरी करके आप करोड़पति नहीं बन सकते—तिजारत करो। और हम पढ़े-लिखे लोग तिजारत करना नहीं चाहते। इसीलिए तो बेकारी बढ़ रही है। फिर मैं कहता हूँ कि अगर ये निरक्षर मारवाड़ी लाखों रुपये तिजारत से पैदा कर सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं इसमें सफल हो सकता, जब कि मैं काफी शिक्षित हूँ ।"

और तीसरे दिन मिस्टर खुशबख्तराय कलकत्ता के लिए रवाना हो गए।

*   *   *

एम० ए० पास करके मैंने वकालत पढ़ना आरम्भ किया। एक वर्ष बीत गया; पर मिस्टर खुशबख्तराय का कोई पता न चला। पहले तो कुछ दिनों तक पत्र-व्यवहार हुआ और अन्तिम सूचना मुझे यह मिली

थी कि उन्होंने किसी विदेशी फर्म की एजेन्सी ले ली । इसके बाद क्या हुआ, यह मुझे मालूम न था; पर उसे जानने को मैं बड़ा उत्सुक था।

और फिर एक दिन मिस्टर खुशबख्तराय लदे-फदे होस्टल पहुँचे। उन्हें देखते ही मैं उछल पड़ा। नौकर से उनका सामान मैंने अपने कमरे में रखवाया। इस बार मिस्टर खुशबख्तराय कुछ अधिक तन्दुरुस्त थे। कपड़े अधिक कीमती और बिलकुल अप-टू-डेट थे। मुख पर ललाई थी और आँखों में चमक। और मैंने समझ लिया कि मिस्टर खुशबख्तराय व्यापार में फले-फूले हैं।

दिन भर गपबाजी होती रही। रात के समय एकान्त में हम दोनों अपने सुख-दुख की बातें करने बैठे। मैंने पूछा—"कहो भाई, कलकत्ता में कैसी बीत रही है ?"

मिस्टर खुशबख्तराय का मुख उतर गया—"यार कलकत्ता तो छोड़ आया !"

"अरे !" आश्चर्य से मैंने पूछा।

"हाँ। दुनिया बड़ी बेईमान है और कलकत्ता तो बेईमानों का घर है। एक आदमी के साझे में एजेन्सी ली थी। एजेन्सी का काम-काज वह देखता था और मैं जरा कलकत्ता की रंगत देखने में लग गया। साल भर बाद उसने जब हिसाब-किताब बताया, तो मालूम हुआ कि आठ हजार रुपया का घाटा आया। उस आठ हजार में चार हजार मेरे और चार हजार उसके थे। अब वह बोला कि चार हजार और दो तो काम चले और मेरे पास जानते ही हो कि कुल पाँच हजार रुपये थे।"

"यार यह तो बुरा हुआ।" मैंने गम्भीर होकर कहा।

खुशबख्तराय मुस्कराये—"ऐसा कोई बुरा भी नहीं हुआ। साला बेईमानी कर गया; क्योंकि वह अकेले अब एजेंसी लिये हुए है। लेकिन इससे क्या? मैं यह जान [illegible] कि दुनिया में किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए। कुछ सीखा ही। अब जो व्यापार करूँगा उसमें मेरा अनुभव मेरी सहायता करेगा।"

"लेकिन तुम्हारे पास रुपया कहाँ है, जो तुम व्यापार करोगे ?" अपनी मुस्कराहट दबाते हुए मैंने पूछा। खुशबख्तराय का मुख उतर गया--"हाँ, यार यह तो ठीक कहते हो।" पर एकाएक मुख खिल उठा "अरे अभी एक हजार तो मेरे पास है--कोई छोटा काम आरम्भ करूँगा --वह बढ़ते-बढ़ते बड़ा काम हो जायगा।"

फिर यह सोचा गया कि खुशबख्तराय अब कौन काम करें, किसी निर्णय पर हम नहीं पहुँच सके। एकाएक खुशबख्तराय कुर्सी से उछल पड़े--"आ गया, एकबारगी अच्छा काम समझ में आ गया ! क्यों, यूनिवर्सिटी में रिस्टोराँ क्यों न खोलूँ ?" और रिस्टोराँ खुल गया, बड़ी शान से। ओपनिंग सेरीमनी में दावत हुई, गाना-बजाना हुआ और बड़े जल्से रहे। महीने भर के अन्दर ही रिस्टोराँ चल निकला।

मैंने वकालत पास की और अपने घर चला गया। मिस्टर खुशबख्तराय का रिस्टोराँ ज़ोरों के साथ चल रहा था और मुझे प्रसन्नता यह थी कि साल भर के अन्दर ही वे अपने काम में सफल हुए; पर कनवोकेशन के समय जब मैं आया, तब अचानक एक अजीब दृश्य देखने को मिला।

मिस्टर खुशबख्तराय के रिस्टोराँ के सामने भीड़ लगी थी। भीतर मिस्टर खुशबख्तराय उदास बैठे थे और उनको घेरे खड़े थे पाँच-छै आदमी। साथ वही व एकाउण्ट-बुक के। बाहर एक आदमी डुग्गी बजा रहा था और भीतर दो नौकर दूकान का सामान हटा रहे थ।

मुझे देखते ही मिस्टर खुशबख्तराय की जान में जान आई। तपाक के साथ वे उठे, मुझे उन्होंने कुर्सी पर बैठाया। मैंने पूछा--"है क्या ?"

मिस्टर खुशबख्तराय का स्वर दृढ़ हो गया--"है क्या ? वे लोग सब-के-सब बेईमान। इतना कहा कि भाई, अपना हिसाब-किताब ठीक बनाओ, लेकिन मानते ही नहीं। दूना और चौगुना तो हिसाब बनाये हुए हैं, और मेरा रुपया उधा[illegible]ला बतलाओ मैं दूँ तो कहाँ से ? अब आए हैं दूकान नीलाम करवाने, ले जायँ साले, क्या लेंगे कुछ चीनी के और कुछ टीन के बरतन ! यही न ! और चलो--तुम अच्छे

आ गए, मैं तो यहाँ से जाने ही वाला था। यह दूकान है सो लो, क्रेडिट-बुक है सो लो और भुगतो बाबा, मैं बाज आया।" और यह कहते हुए उन्होंने शान से अपना हैट लगाया और मेरा हाथ पकड़े हुए दूकान के बाहर आ गए।

मैं उनके घर गया, वहाँ बैठ कर मैंने उनसे बातें कीं। अपनी सारी कथा आदि से अन्त तक उन्होंने मुझे सुना डाली। किस प्रकार यूनिवर्सिटी के लड़कों ने उनको दाम नहीं दिये, किस प्रकार उन्होंने मुरौवत में रुपयों का तकाज़ा नहीं किया। किस प्रकार उन पर मुकदमे चले, किस प्रकार उन पर डिगरियाँ हुईं और किस प्रकार उनकी दूकान कुर्क हुई।

"अब क्या करोगे ?" मैंने पूछा।

कुछ सोच कर उन्होंने कहा--"अबकी बार ऐसा व्यापार करूँगा, जिसमें मुझे घाटा हो ही नहीं सकता।"

ऐसा कौन-सा व्यापार है ?"

"यह न पूछो। बस इतना जानना काफ़ी है कि व्यापार करूँगा, नौकरी नहीं।"

"और व्यापार करने के लिए रुपया ?"

"अरे हाँ, यह तो भूल ही गया था।" मिस्टर खुशबख्तराय कुछ विचलित हुए; पर शीघ्र ही वे सुव्यवस्थित होकर बोले—"दोस्त सौ रुपया तो मेरे पास है चार सौ रुपया और चाहिए। अगर तुम उधार दे सको, तो मैं तीन महीने के अन्दर ही तुम्हें लौटा दूँगा।"

मैं मुसकराया। खुशबख्तराय के कन्धे पर हाथ रखते हुए मैंने कहा--"यार रुपया वापस करने की तो बात छोड़ो, क्योंकि हम दोनों के बीच कभी वापस करने का अवसर नहीं रहा है, हाँ चार सौ रुपया मैं तुम्हें अवश्य दे सकता हूँ एक शर्त पर, कि फिर तुम आगे मुझ से और कुछ न माँगो।"

मेरी बात खुशबख्तराय को कुछ बुरी लगी। उनका मुख तमतमा उठा--"सुरेश तुम बड़े कमीने आदमी हो। तुम्हारे चार सौ की जगह

में तुम्हें चार हजार वापस करूँगा समझे !"

किसी तरह मैंने खुशबख्तराय को शान्त किया । चार सौ रुपये मैंने उन्हें दे दिये ।

*　　*　　*

कचहरी से लौटते समय मैंने अपनी कार सराफे में बढ़ा दी । मेरी बीवी जिद पकड़ गई थी कि अपनी कमाई से एक गहना मैं उसे बनवा दूँ ।

और वहाँ मैंने देखा कि एक दूकान पर भीड़ जमा है । और अप-टू-डेट जैंटिलमैन को पकड़े हुए चार-पाँच आदमी बैठे हुए हैं और बीच-बीच में लोग उन जैंटिलमैन के एक आध धप भी रख देते हैं । मैंने कार रोक दी और पूछा—"क्या है ?"

एक आदमी बोला—"वकील साहब, जाली सिक्के चला रहा है, पुलिस में खबर तो भिजवा दी है; लेकिन पुलिस के आने तक इनकी थोड़ी-सी मरम्मत हमीं लोग कर रहे हैं ।"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने देखा कि जो सज्जन पिट रहे थे, वे मेरे सबसे घनिष्ट मित्र मिस्टर .खुशबख्तराय थे । मैं कार से उतर पड़ा, खुशबख्तराय मुझे देखते ही उछल पड़े । एक झटके में उन्होंने अपने को उन चार-पाँच लोगों से छुड़ा लिया, तन कर वे खड़े हो गये । उन्होंने कहा—"मिस्टर सुरेश, आप हैं ! देखिये ये लोग एक शरीफ परदेशी की इज्जत बिगाड़ रहे हैं । एक तो मेरे रुपयों को जाली कह कर छीन लिया और ऊपर से मुझे मार रहे हैं ।"

दूकानवाले ने मुझसे कहा—वकील साहब, देखिये ये जाली रुपय हैं या नहीं ? यह कह कर उसने दो सौ रुपये मेरे सामने रख दिये ।

खुशबख्तराय गरज उठे—"ये रुपये मेरे नहीं हैं, खुद जाली रुपये बनाता है और मेरे रुपये दूकान में रख कर कहता है कि मैंने जाली रुपये दिये । आने दो पुलिस को !" और इतना कहकर तेजी के साथ अँग्रेजी में वे मुझ से मेरी क्षेम-कुशल पूछने लगे ।

दूकान वाला घबड़ाया। मैंने भी अब मौका देख कर कहा--"अच्छा अब क्या हो ? पुलिस को बुलाना बेकार है, तुम दोनों ही फँसोगे।"

दूकान वाले ने सकपकाते हुए कहा--"तो वकील साहब, अब बतलाइये क्या हो ?"

"हो क्या ? तुम उनके रुपये उनको दे दो और वे चले जायँ।"

काफी कहा-सुनी के बाद खुशवख्तराय, अपने जाली रुपये लेकर वहाँ से हटे। कार पर उन्हें बिठला कर मैं अपने घर पर लाया।

कार पर मैंने खुशवख्तराय से कहा--"ये जाली रुपये लेकर क्यों घूम रहे हो ? जानते हो कि उसमें तुम्हें क्या सजा हो सकती है ?"

"यार क्या बतलाऊँ, तौल में कुछ गलती हो गई।"

"कैसी तौल ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

बड़े इतमीनान के साथ मि० खुशवख्तराय ने कहा--"आजकल मैं रुपया बनाने का रोजगार कर रहा हूँ।"

"कुछ पैदा किया ?" मैंने पूछा।

"नहीं, अभी तक तो सिर्फ मेरा ही खर्च निकल रहा है, और वह भी बड़ी मुश्किल से। इन रुपयों को निकालने वाला एजेंट जब तक नहीं मिलता, तब तक यह काम अधिक नहीं चल सकता। थोड़ी देर तक रुक कर उन्होंने फिर कहा--"और अगर आप न आ गए होते, तो मैं बड़ी मुसीबत में पड़ जाता। भाई, आज के अनुभव के बाद से यह काम भी छोड़ना जरूरी हो गया।"

"फिर अब क्या करोगे ?" मैंने पूछा।

"कुछ समझ में नहीं आता, कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा।"

एक हफ्ते बाद मि० खुशवख्तराय मेरे मकान पर आए। उस दिन वे बड़े प्रसन्न दिखते थे। बात-चीत होती रही। एकाएक उन्होंने मुझसे कहा--"सुरेश, पैसा पैदा करने का एक बड़ा सुन्दर तरीका मैंने ढूँढ़ निकाला है।"

"वह क्या है ?"

"देखो, कल यहाँ के सबसे बड़े सेठ...से मैं मिला। मैंने उससे कहा कि एक हफ्ते के अन्दर पाँच हजार रुपया मुझे दे दो, नहीं तो उसके बाद शहर के किसी भी चौराहे पर मैं तुम्हारे पाँच जूते मारूँगा।"

"तो तुम क्या समझते हो कि वह तुम्हें पाँच हजार रुपया दे देगा?"

"क्यों नहीं, अगर उसे इज्जत बचानी है, तो वह शर्तिया देगा।"

"और अगर न दे तो?"

"तो मैं उसके पाँच जूते जरूर मारूँगा और वह भी ठीक चौराहे पर, जहाँ सब लोग देख सकें।"

"तो उसके लिए तुम्हें जेल जाना पड़ेगा।"

"अरे जेल जाने से क्या हुआ? जहाँ महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल ऐसे बड़े आदमी जेल जाते हैं, वहाँ मुझे जेल जाने में क्या आपत्ति?"

"वे लोग तो राजनैतिक कारणों से गये हैं?"

"और मैं भी तो राजनैतिक कारणों से ही जाऊँगा। जानते हो कि मैं सोशलिस्ट हूँ। मैं धन के बराबर बँटवारे में विश्वास करता हूँ। सेठ के पास अधिक रुपया है और उसे इतना रुपया रखने का अधिकार नहीं है।"

"तुम्हारी सफलता के लिए मेरी शुभकामना!" यह कह कर मैं हँस पड़ा।

* * *

और पन्द्रह दिन बाद मिस्टर खुशबख्तराय कचहरी में हाजिर किये गये। उन पर अभियोग था कि...चौराहे पर उन्होंने सेठ...के पाँच जूते मारे। अपने सब से घनिष्ठ मित्र की पैरवी मुझे ही करनी पड़ी।

अदालत में मिस्टर के० राय ने सोशलिज़्म पर एक लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया और मजिस्ट्रेट ने उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें छै महीने के लिए सरकारी मेहमान बना लिया।

जिस समय मिस्टर खुशबख्तराय जेल जा रहे थे, उन्होंने मुझसे कहा—"सुरेश, देखना छै महीने बाद जब मैं उस सेठ से कहूँगा कि अबकी रुपया दो या बीच चौराहे पर फिर पाँच जूते मारूँगा, तो इस बार वह शर्तिया

रुपये दे देगा । समझे और देखो पत्रों में मेरा वयान प्रकाशित करवा देना।"

* * *

तीन महीने बीत चुके हैं, और तीन महीने बाद मिस्टर खुशबख्तराय जेल के बाहर आवेंगे। मैं उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। देखूँ कि इस बार उनको सफलता मिलती है या नहीं। यदि उनको सफलता मिल गई, तो दुनिया को रुपया पैदा करने का एक बहुत ही नया और सरल उपाय मालूम हो जायगा।

अनशन

पाण्डेय मस्तराम का कहना है कि मित्रों के आग्रह से उस दिन, सुबह भंग पीने के आदी न होते हुए भी, उन्होंने भंग बनाई और मित्रों का कहना है कि सुबह उठते ही पाण्डेयजी परीक्षा समाप्त हो जाने की प्रसन्नता में हम लोगों को भंग पीने के लिए आमंत्रित कर के सिल-लोढ़े पर जुट पड़े। पाण्डेयजी का कहना है कि उनके मित्रों ने काफी भांग पी और उनके लिए सिर्फ दो लोटे भाँग बची थी और मित्रों का कहना है कि पाण्डेयजी ने पहले दो लोटे भांग जमा ली, फिर इसके बाद बची हुई लोटे भर भांग को चुल्लुओं की नाप से हम लोगों में प्रसाद-रूप में वितरित किया। पाण्डेयजी की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखलाई देता; पर उनके मित्रों की बात पर भी अविश्वास नहीं किया जा सकता। इतना तै है कि पाण्डेय मस्तराम ने उस दिन सुबह नौ बजे भाँग पी, पूरे दो लोटे और इसके बाद एक सप्ताह तक उन्होंने उस भाँग का आनन्द उठाया।

पता नहीं किस प्रकार अपने पुत्र के जन्मकाल के समय ही पाण्डेयजी के पिता को अपने पुत्र के गुण मालूम हो गये थे, क्योंकि ज्योतिषी वे थे नहीं और फ़िजियानोमी साइंस का अध्ययन करने का उन्हें कभी मौका न मिला था; पर उन्होंने अपने पुत्र का नाम सोलह आने उसके गुणानुसार रक्खा था, पाण्डेय मस्तराम को जाननेवाले यह दावे के साथ कह सकते हैं लम्बे-चौड़े गोल-मटोल और गोरे-चिट्टे जवान थे, हँसते थे तो बोर्डिंग की छत हिल उठती थी। दीन-दुनिया की उन्हें फिक्र न थी, पढ़ने-लिखने में उनका

मन न लगता था । खाना, सोना और जब इनसे फुरसत मिले, तब गप लड़ाना--बस यही उनका काम था ।

हाँ, तो उस दिन पाण्डेय मस्तराम ने सुबह नौ बजे भाँग पी, दस बजे स्नान किया और ग्यारह बजे भोजन पर बैठे। एक दिन पहले परीक्षा समाप्त हुई थी; पर उस दिन पर्चा खराब हो जाने के कारण परीक्षा समाप्त होने वाली निश्चिन्तता का आनन्द वह न ले सके थे। खाना खाकर ग्यारह बजे सुबह सोये थे और उठे थे शाम को छः बजे, इसके बाद खाना खा कर फिर सो गए और दूसरे दिन सुबह चार बजे उनकी आँख खुली। उस समय तक उनका दुःख दूर हो गया था; क्योंकि पहला काम जो उन्होंने किया था, वह था प्रभाती की अलाप भरना। दुःख के समय कोई गाना नहीं गा सकता, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। हिन्दुस्तानी थियेटरों की बात जाने दीजिए, वहाँ तो दूसरों के मरने के समय या स्वयं अपने मरने के समय लोग एक-से-एक मीठी तानों के साथ मीड़ों और मूर्च्छनाओं से युक्त शुद्ध राग-रागिनियों में तबला और हारमोनियम के ऊपर अलापें भरते हैं। और कला का प्रदर्शन करते हैं।

उस दिन न तो एकादशी थी और न कोई पर्व, पर पाण्डेयजी का कहना है कि उन्होंने व्रत रक्खा था। पाण्डेयजी की बात मानते हुए इसी निर्णय पर पहुँचा जा सकता था कि उनका व्रत अपने बिगड़े हुए परचे के परीक्षक के इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए था, जो पाण्डेयजी की कापी जाँचते समय परीक्षक के हृदय में करुणा और दया की भावनाओं का स्रोत प्रवाहित कर दे।

पाण्डेयजी के सामने मखाने के खीर से भरा ढाई सेर वाला कटोरा था। (कटोरा का वजन मय खीर के बतलाया जा रहा है) और चीनी पड़ी हुई आध सेर बालाई थी। ठीक ग्यारह बजे भोजन आरम्भ करके साढ़े ग्यारह बजे उन्होंने भोजन समाप्त किया और चौके से उठने के लिए पेट में पहुँचे हुए माल का उतना हिस्सा पचाने के लिए जो उनके हिलने-डुलने में बाधक हो रहा था, आध घण्टे तक पैर फैलाये हुए चौके में बैठ

कर बारह बजे वे उठे ।

लोगों का कहना है कि गर्मियों में सुबह बनारस की, शाम लखनऊ की और रात बुन्देलखण्ड की मशहूर है, और मैं कहूँगा कि उनमें यदि दोपहर इलाहाबाद की भी जोड़ ली जाय, तो अनुचित न होगा। लू के झोंके और एक सौ अठारह डिगरी का टेम्परेचर! पर महीना था अप्रैल का, गर्मी की शुरूआत भर थी। पाण्डेयजी अपने कमरे में गए, बिस्तर पर लेटे और धीरे-धीरे उन्हें मालूम हुआ कि अनादिकाल से उनके कमरे में भट्टी जलती चली आई है। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि उस कमरे में वे अभी तक जीवित किस प्रकार बने रहे। उधर शरीर शिथिल पड़ रहा था, आँखें झपी जा रही थीं।

एकाएक पाण्डेयजी उछल पड़े। उन्होंने शीतलपाटी बगल में दबाई, कमरे के बाहर निकल कर दरवाजे पर ताला दिया, और अल्फ्रेड पार्क की राह पकड़ी। चारों तरफ सन्नाटा था, दोपहर जल रही थी—'तेल की भुलमुल ऊपर घाम' पाण्डेयजी ने मिसरा बनाया और एकाएक उनको परचा खराब होने की बात याद आ गई। दूसरा मिसरा उसी समय बना, 'हमें पास करवा दो राम!' पाण्डेयजी मुस्कराए, उनमें कवित्व-प्रतिभा जाग उठी, फिर क्या था, मिसरे-पर-मिसरे बनने लगे—

'मस्तराम है मेरा नाम। मौज उड़ाना अपना काम।
मिले जिन्दगी भर आराम। लगे न मुँह में कभी लगाम।'

और उनकी ठोड़ी पर एक मक्खी बैठी, उसे उड़ाने के लिए उन्होंने ठोड़ी पर हाथ मारा। मक्खी तो उड़ गई, हाथ पड़ा ठोड़ी पर और ऐसा मालूम हुआ कि खड़ी सुइयों के गुच्छे पर उन्होंने अपना हाथ पटक दिया। याद आया कि इम्तिहान की फिक्र में उन्होंने एक हफ्ते से दाढ़ी नहीं बनवाई, मिसरा लगा—

'हमें चाहिए अब हज्जाम'

जेब में हाथ डाला; उसी समय दूसरा मिसरा बना—

'टेंट में अपनी नहीं छदाम!'

इस समय तक पाण्डेयजी की आँखें बन्द थीं। एक गढ़े में पैर पड़ा और आँखें खुल गईं। देखा कि अल्फ्रेड पार्क में चले जा रहे हैं, उसी समय मिसरा बना—

'अब करना होगा विश्राम !'

पाण्डेयजी ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली, निर्जन एकान्त और धूप के रूप में आसमान से बरसती हुई आग ! उस पर हलकी लू भी चल रही थी। थोड़ी दूर पर एक नाला था, काफी गहरा। दिमाग ने काम किया, नाले के नीचे कोई बाधा नहीं है, न कोई आदमी आवेगा और न कोई अड़चन पड़ेगी। फिर जमीन से करीब पन्द्रह फीट नीचे होने के कारण तहखाने का काम भी दे सकता है। पाण्डेयजी नाले में उतर पड़े। एक सघन वृक्ष के तले उन्होंने अपने बनाए हुए मिसरों को याद करने का प्रयत्न किया, पर भाँग के बोझ से लदे हुए दिमाग ने जब इससे इन्कार कर दिया, तब महाकवि बनने की कल्पना करने लगे। दिमाग पर पेट ने विजय पाई, जो काफी भरा हुआ था। पाण्डेयजी ने दाहिनी करवट ली, चैन न मिली, बाँई करवट ली, चैन न मिली, चित्त लेटे, फिर भी चैन नदारद। पेट के बल औंधे लेटे—इस समय तक शायद चैन को उन पर रहम आ गया था, और सो गए।

*　　　*　　　*

मिस्टर जे० पी० श्रीवास्तव जैसा, वे स्वयं अपने को कहते थे, बाबू झटपटप्रसाद जैसा उनके वालिद व अन्य सम्बन्धी उनका नाम बतलाते थे, और झटपट मुंशी जैसा कि उनके हमजोलियों ने उनका नाम रख दिया था, काफी तेज व चलते-पुरजे आदमी थे। दुबला-पतला मझोला कद, मुँह लम्बा-सा और उस पर बुरी तरह चेचक के दाग, रंग साँवला और आँखें छोटी-छोटी तथा चमकीली, और चाल शुतुरमुर्ग की तरह। उनकी परीक्षा उसी दिन समाप्त हुई थी। हाल से निकलकर वे सीधे अपनी भावी ससुराल गए। उनके भावी ससुर ने परचे कैसे हुए इसका विवरण सुना, भावी सास ने विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यञ्जन खिलाए, भावी साले

ने शाम के समय के लिए सिनेमा में आमंत्रित किया और भावी पत्नी ने हारमोनियम पर दो गाने सुनाए और भावी सलहज ने कुछ देर तक इनके चेहरे को गौर से देखने के बाद मुसकराते हुए कहा—"बाबू, तबीयत होती है, तुम्हारा मुँह चूम लूँ, तुम इतने सुन्दर दिख रहे हो !" झटपट मुंशी की सलहज सुन्दरी थी और उसके उद्गार सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इन सब में एक बज गया, सिविललाइन्स में सवारी मिलना मुश्किल होता है, मुंशीजी पैदल ही बोर्डिंग को रवाना हो गए। कायस्थ पाठशाला बोर्डिंग जाना था, अल्फ्रेड पार्क से उन्होंने शार्टकट लिया। झटपट मुंशी की प्रसन्नता की सीमा न थी, लम्बे-लम्बे डग रखते हुए चले जा रहे थे। वे सोच रहे थे—"उफ ! रामू की बीबी (रामू उनके भावी साले का नाम था) गजब की खूबसूरत है, सरला से कहीं अधिक ! (सरला इनकी भावी पत्नी का नाम था) क्या रामू की बीबी मुझसे प्रेम करती है, हाँ जरूर प्रेम करती है, तभी तो उसने मुझसे यह सब कहा। लेकिन नहीं, मुझे उससे प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं—मैं सरला के प्रति अन्याय न करूँगा। आह रामू की बीबी ! मुझे क्षमा करना, मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करती हो; पर मैं तुमसे प्रेम नहीं कर सकता—हर्गिज नहीं कर सकता !"

अचानक यह सुखद विचार-धारा टूट गई। जिस नाले के बगल से वे जा रहे थे, उसके नीचे झटपट मुंशी की नजर गई। वे चौंक उठे, उनका मुख सफेद हो गया और सारा शरीर काँपने लगा। इस एकान्त में अल्फ्रेड पार्क के नाले में एक आदमी मरा हुआ पड़ा था—चारों ओर निर्जन एकान्त ! कोई फकीर न था—अच्छे कपड़े पहने हुए कोई सुशिक्षित व्यक्ति। सम्भवतः कोई विद्यार्थी। अरे हाँ, उन्होंने कई बार सुना था कि फेल हो जाने पर कोई-कोई व्यक्ति आत्म-हत्या कर लेते हैं। आज-कल परीक्षाएँ हो रही हैं, जरूर इसने आत्म-हत्या की होगी; पर अभी परीक्षा-फल निकला नहीं, आत्म-हत्या करने के ये दिन तो नहीं हैं। बहुत सम्भव है कि किसी ने इसे मार कर डाल दिया हो। झटपट मुंशी ने यह सब एक साँस में सोच डाला।

यह तय था कि उसकी इत्तिला थाने में देनी चाहिए, कर्नलगंज थाना

बोर्डिंग के रास्ते में पड़ता था, वे चल दिये। थाने पहुँचकर उन्होंने दारोगा गिरफ्तार अली के पास इत्तिला भिजवाई।

दारोगा गिरफ्तार अली खस की टट्टियों से सुवासित कमरे में लेटे हुए अपनी तोंद पर हाथ फेर रहे थे। सिपाही से खबर सुनते ही वे मरने वाले को और मरने वाले की इत्तिला देने वाले को कोसते हुए बाहर निकले। आजाद की मृत्यु के बाद से दारोगा गिरफ्तार अली के दिमाग में क्रान्तिकारी बुरी तरह से घुस गये थे। मृत मनुष्य की हुलिया सुनते ही उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाते हुए कहा––"जरूर कोई क्रान्तिकारी होगा!" थाने से बारह सिपाही छाँटे गए, झटपट मुंशी के साथ पुलिस फोर्स ने अल्फ्रेड पार्क की ओर मार्च किया।

नाले के पास पहुँच कर झटपट मुंशी ने इशारा करते हुए कहा––"देखिए, लाश वहाँ पड़ी है!"

दारोगा जी रुक गए और उनके रुकते ही सिपाही भी रुक गए। दारोगा जी झटपट मुंशी के साथ आगे बढ़े, ठीक उस जगह पहुँचकर, जिसके नीचे पाण्डेयजी विश्राम कर रहे थे, दारोगाजी रुके, गौर से उन्होंने नीचे देखा, फिर धीरे से कहा––"जनाब! जैसा मैंने कहा था, साफ जाहिर है कि कोई क्रान्तिकारी है।"

इस समय तक सब सिपाही दारोगाजी को घेर कर खड़े हो गए थे। एक ने मुसकराते हुए कहा––"हुजूर, मालूम होता है कि यह यहीं का कोई तालिबइल्म है जिसने खुदकुशी कर ली है।"

दूसरे ने कहा––"शायद कोई बनिया है, बदमाशों ने रकम छीन ली है और मारकर यहाँ डाल गए हैं।"

इस पर तीसरे ने कहा––"लेकिन फिर इसके नीचे चटाई कैसे आई?"

चौथे ने कहा––"मुमकिन है कि किसी इसके रिश्तेदार ने इसे घर पर ही मार डाला, फिर चटाई में लपेट कर यहाँ डाल गए।"

बातें हो रही थीं, पर नीचे कोई न उतरता था। करीब पन्द्रह मिनट

तक काफी मशविरे के बाद सब लोग नाले के नीचे उतरे। फूँक-फूँक कर कदम रखते हुए वे पास पहुँचे और खड़े हो गये, हाथ लगाने की हिम्मत किसी की नहीं पड़ी। दारोगाजी झटपट मुंशी के साथ ऊपर ही खड़े थे, चिल्ला कर उन्होंने कहा—"अरे चुप खड़े हो, लाश सीधी तो करो।" सब लोग एक दूसरे को आगे बढ़ने को उत्तेजित करने लगे। दारोगाजी इस बार गरज उठे—"नमकहरामी, पुलिस की नौकरी करने चले हो और यहाँ नानी मर रही है।"

दारोगाजी इस जोर से गरजे कि पाण्डेयजी की नींद खुल गई, उन्होंन करवट ली, आँखें खोलीं, देखा कि लाल पगड़ियाँ उनको घेरे खड़ी हैं, और फिर आँखें बन्द कर लीं।

दारोगाजी ने जब देखा कि नाले में पड़ा हुआ आदमी मरा नहीं है, तब और भी झल्लाए। उन्होंने झटपट मुंशी पर तीव्र दृष्टि डाली, मानो वे उन्हें खा जायँगे और तेजी के साथ नीचे उतरे। इधर झटपट मुंशी ने मामला बिगड़ते हुए देख कर लम्बे-लम्बे डग रखते अपने घर की राह ली।

दारोगाजी ने पाण्डेयजी का कन्धा पकड़ कर हिलाया, पाण्डेयजी उठ कर बैठ गए। दारोगाजी ने पूछा—"तुम यहाँ क्यों पड़े हो ?"

पाण्डेयजी ने जमुहाई लेते हुए कहा—"मेरी तबीयत !"

इस जलती हुई दोपहर में खस की टट्टियों के बाहर निकल कर बारह सिपाहियों को मार्च करवाते हुए थाने से अल्फ्रेड पार्क आने से दारोगाजी का दिमाग गरम हो गया था। उन्हें झटपट मुंशी पर क्रोध आ रहा था, उन्होंने यह कहते हुए सिर उठाया—"क्यों, जी . . ." लेकिन मुंशी गायब !

जब दारोगाजी आपे से बाहर हो गये, दाँत किटकिटाते हुए उन्होंने पूछा—"तुम्हारा नाम ?"

पाण्डेयजी अजब चक्कर में थे—इतने लाल पगड़ी वाले क्यों वहाँ खड़े थे। फिर कच्ची नींद जगाये जाने पर उन्हें बुरा भी लग रहा था। दारोगा जी की बात सुनकर पाण्डेयजी को भी क्रोध आ गया, उन्होंने कहा—"जनाब आदमियत से बात कीजिए !"

दारोगाजी ने आँखें तरेरते हुए कहा––"आप नाम बतलाते हैं कि नहीं ?"

पाण्डेयजी का क्रोध बढ़ता जा रहा था––"नाम नहीं बतलाऊँगा, यहाँ से जाते हो कि नहीं ?"

सिपाही एक दूसरे की ओर देख कर मुस्करा रहे थे, दारोगाजी ने कहा––"अच्छा तुम सीधी तरह से नहीं मानोगे !"

पाण्डेयजी ने बैठे-ही-बैठे कहा––"जनाब आप अब मार खाएँगे !"

दारोगाजी दो कदम पीछे हट गए––"समझ गया, जनाब आप हिरासत में ले लिए गए।"––और सिपाहियों को उन्होंने पाण्डेयजी को गिरफ्तार कर लेने का हुक्म दिया।

पाण्डेयजी की तलाशी ली गई, इसके बाद वे कोतवाली भेज दिये गये। वहाँ भी पाण्डेयजी ने अपना नाम व पता बतलाने से इन्कार किया, और वे कोतवाली से हवालात भेज दिये गये। दारोगाजी ने लिखा–– "यह शख्स मुश्तबा हालत में अल्फ्रेड पार्क में पाया गया, मालूम होता है कि कोई रिवेल्यूशनरी है; क्योंकि अपना नाम व पता बतलाने से कतई इन्कार करता है––फिलहाल इसका चालान आवारागर्दी में किया जाता है।"

पाण्डेयजी ने जेल का फाटक देखा, और उनका सारा नशा उतर गया। दारोगा के सवालों का जवाब न देनेवाली भूल उन्हें मालूम हो गई। सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल के सामने जब वे पेश किये गये, तब उन्होंने अपना नाम व पता सब कुछ बतला दिया; लेकिन अब तो बहुत कुछ हो गया था–– जेल में वे बन्द कर दिये गये।

नानकोआपरेशन मूवमेण्ट उन दिनों जोरों पर था––जेल में लोग ठसाठस भरे हुए थे। पाण्डेयजी ने वहाँ बड़े-बड़े नेताओं के दर्शन किये, कुछ ढाँढ़स बँधा; लेकिन भोजनों की तकलीफ। रात किसी तरह से बीती–– सुबह सुपरिन्टेण्डेण्ट साहब का राउण्ड हुआ। पाण्डेयजी रात भर में जेल-जीवन से ऊब गए थे, सुबह नाश्ता कुछ मिला नहीं, बिगड़ कर सुपरिन्टेण्डेण्ट

साहब से बोले––"जनाब, न तो नाश्ता मिलता है और न मेरी समझ में आता है कि मैं यहाँ क्यों बन्द हूँ।" सुपरिन्टेण्डेण्ट साहब ने पाण्डेयजी को गौर से देखा, फिर मुसकराए––"जनाब यह तो जेल है, यहाँ नाश्ता कुछ नहीं मिलने का।" और आगे बढ़ गए।

गुस्से के मारे पाण्डेयजी की बुरी हालत; पर कर क्या सकते थे? पास खड़े हुए कुछ पोलिटिकल कैदी मुसकरा रहे थे। इस गुस्से में पाण्डेयजी ने दिन में खाना नहीं खाया। सन्ध्या के समय पाण्डेयजी ने जेलर से कहलाया कि भाँग-बूटी का प्रबन्ध करवा दिया जाय। इस पर उन्हें कोई उत्तर न मिला।

जेल में एक सज्जन अनशन कर रहे थे, उनकी माँगें पूरी हो गई थीं और उस दिन सुबह उन्होंने अनशन तोड़ा था। रात के समय यह इत्तिला पाण्डेयजी को भी मिली, और अब पाण्डेयजी ने भी अनशन की ठानी।

रात के समय फिर पाण्डेयजी ने भोजन न किया, उन्होंने घोषित कर दिया कि जब तक उनकी माँगें पूरी न की जायँगी, तब तक वे अनशन करेंगे। उनकी माँगें दरयाफ्त की गई, उन्होंने कहा––"सुबह दूध-जलेबी का नाश्ता, दोपहर को भोजन के साथ आध पाव घी, संध्या के समय भांग और रात के समय पूड़ी तथा बालाई।" यह मानी हुई बात थी कि पाण्डेयजी की माँगें स्वीकार नहीं की गईं।

रात भर नींद न आई––भूख के मारे आँतें कल्ला रही थीं। पर दो-तीन राजनैतिक कैदी भी उनके साथ थे। उन्होंने पाण्डेयजी का उत्साह बढ़ाया। एक ने कहा––"देखो, कायरता न करना—अपना अधिकार क्यों छोड़ रहे हो। तुम पर अभी कोई मुकदमा नहीं चला, व्यर्थ ही लोग तुम्हें पकड़ लाए––जब तक तुम पर जुर्म न साबित हो जाय, तुम्हें कष्ट देने का गवर्नमेंट को कोई अधिकार नहीं है। दो-एक दिन का कष्ट है, सहन करो, कष्ट सहन करने के लिए तो मनुष्य का जन्म ही हुआ है।" आदि आदि।

दूसरे दिन बुरे हाल थे––आँखों तले अँधेरा छाया था; पर दूसरा

दिन भी पाण्डेयजी ने काट दिया ।

तीसरे दिन सुपरिन्टेण्डेण्ट जेल के सामने पाण्डेयजी का मामला पेश हुआ । उनकी माँगें बतलाई गई और यह भी बतलाया गया कि दो दिन से उन्होंने कोई भोजन नहीं किया ।

सुपरिन्टेण्डेण्ट ने सिर हिलाते हुए आर्डर दिया--"फोर्स फीडिंग हो ।" और साथ ही उन्होंने कह दिया--"देखो, ज्यादा सख्ती से काम न लेना--आसामी कोई गहरा नहीं है । जल्दी ही काबू में आ जावेगा ।"

दोपहर के समय मेडिकल आफिसर के साथ तीन आदमी पाण्डेयजी की सेवा में उपस्थित हुए । दूध और दूध पिलाने वाली नली साथ में । पाण्डेयजी ने पूछा--"तुम लोग क्यों आए हो ?"

"आप को जबरदस्ती दूध पिलाने ।" मेडिकल आफ़िसर ने उत्तर दिया ।

पाण्डेयजी हिचकिचाए, तबीयत हो रही थी कि कह दें--"जबरदस्ती क्यों, लाओ मैं खुद ही पी लूँ--यहाँ तो मारे भूख के वैसे ही जान निकली जा रही है ।" पर उनकी दृष्टि अपने साथियों पर पड़ गई । उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मानो उनके साथियों की आँखें कह रही हैं--"साहस करो, मनुष्य को निर्बल नहीं होना चाहिए ।" और पाण्डेयजी ने दबी जबान उत्तर दिया--"नहीं, मैं दूध नहीं पीऊँगा ।"

दो आदमियों ने पाण्डेयजी के हाथ पकड़े और एक ने पैर । पाण्डेयजी लिटा दिये गये । नली पाण्डेयजी के मुँह में डाल दी गई--और पाण्डेयजी दूध पी गए । इसके बाद सब लोग चले गए ।

अब सुबह-शाम पाण्डेयजी को दूध मिलने लगा । मेडिकल आफिसर के आते ही पाण्डेयजी स्वयं लेट जाते थे और चिल्लाने लगते थे कि, "मैं खाना नहीं खाऊँगा, कभी नहीं खाऊँगा"--और उसके बाद दूध पी जाते थे ।

पाँचवें दिन पाण्डेयजी को दोपहर में बड़ी भूख लगी--वे बाहर निकले और चिल्लाने लगे--"मैं खाना नहीं खाऊँगा । कभी नहीं खाऊँगा ।"

बात वार्डरों के कानों तक पहुँची। वार्डरों ने जेलर से कहा। जेलर हँसा, मेडिकल आफिसर के साथ दूध और नली उसने भिजवा दी, पाण्डेयजी दूध पी गए। यह खबर जेल भर में फैल गई। अब क्या था, जहाँ पाण्डेयजी को भूख लगी और उन्होंने हल्ला मचाना शुरू किया, और जहाँ पाण्डेयजी ने हल्ला मचाया, वहाँ लोग दूध और नली लेकर पाण्डेयजी की सेवा में उपस्थित हो गए। साथ ही दर्शकों की भीड़ लग जाती थी।

सातवें दिन पुलिस की तहकीकात समाप्त हुई—और पाण्डेयजी छोड़ दिए गए।

लाला तिकड़मीलाल

१

उस दिन एक विराट् कवि-सम्मेलन था, और कवि-सम्मेलन के सभापति थे ठाकुर नामकमावनसिंह। ठाकुर नामकमावनसिंह एक बहुत बड़े जमींदार थे—अगाध सम्पत्ति के स्वामी और पूरे कलाकार। संगीत और चित्रकला से उन्हें रुचि थी, अन्य कलाओं से भी अनुराग था। एक दिन हिन्दी-कवियों के भाग्य खुल गये। ठाकुर नामकमावनसिंह ने यह तै किया कि और-और बातों पर जहाँ लाखों रुपया खर्च हो जाता है, वहाँ कुछ थोड़ा-सा साहित्य पर भी खर्च होने में कोई हर्ज नहीं। साहित्यकारों के हाथ में ख्याति की बागडोर है—उनकी खातिरदारी से लाभ ही हो सकता है।

ठाकुर नामकमावनसिंह ने पत्रों में सूचना निकाल दी कि हिन्दी में कविता की सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक लिखनेवाले को वे पाँच सौ रुपये का पुरस्कार देंगे। प्रत्येक पुस्तक की सात-सात प्रतियाँ आनी चाहिए। पुस्तकें पहुँचने लगीं और पुस्तकों के साथ-साथ पहुँचने लगे कवि। कवियों में ठाकुर नामकमावनसिंह को प्रसन्न करने की होड़ लग गई। किसी ने नामकमावन-बावनी का निर्माण किया और किसी ने नामकमावन-वन्दना बनाई। किसी ने ठाकुर नामकमावन को कुबेर से उपमा दी और किसी ने ठाकुर नामकमावनसिंह को नवयुग का प्रवर्तक कह डाला। ठाकुर नामकमावनसिंह के चित्रों के साथ उनके जीवन-चरित्र पत्रों में प्रकाशित हुए, उनकी प्रशंसाएँ

लिखी गई, और उनका गुण गाया गया। अन्त में कवियों ने मिल कर उन्हें कवि-सम्मेलन का सभापति भी बना दिया।

मञ्च पर सभापति महोदय विराजमान थे—और उनको घेरे हुए तथा उनकी खुशामदें करता हुआ कवि-समाज भी बैठा था। कविताओं का पाट हो रहा था और कविगण ठाकुर नामकमावनसिंह को अपना चमत्कार दिखला रहे थे। सभा-भवन दर्शकों से ठसाठस भरा था—एक समा बँधा था।

एक कोने में लाला तिकड़मीलाल बैठे हुए कविताओं का आनन्द ले रहे थे। लाला तिकड़मीलाल करीब तीस वर्ष के गोल-मटोल जवान थे। लाला तिकड़मीलाल के मित्र उनकी उपमा फुटबाल से देते हैं और उनके शत्रु—जिनमें अधिकांश वे लोग हैं जिनसे लाला तिकड़मीलाल अपने पिता द्वारा दिये गए सौ रुपयों के बदले में पाँच सौ रुपये वसूल कर चुके हैं और अब जिन पर हजार रुपये की डिगरी लदी हुई है—उन्हें भैंसासुर का अवतार मानते हैं। मालूम होता है कि जिस समय ब्रह्मा लाला तिकड़मीलाल को गढ़ने की सोच रहे थे, उनको सामने आबनूस का एक मोटा-सा कुन्दा मिल गया था। उनका मारकीन का कुरता अपने सैकड़ों मुखों द्वारा उनसे गिड़गिड़ा कर प्रार्थना कर रहा था—"मालिक, अब तो हम पर दया करो और शान्तिपूर्वक हमें मरने दो। अब हममें शक्ति नहीं है, जो हम तुम्हारी सेवा कर सकें। बारह गण्डे देकर सूद-दर-सूद सहित दस रुपये का काम हम से करवा चुके हो। अब हम समाप्त हो चुके।"

उस कवि-सम्मेलन से तिकड़मीलाल प्रभावित हुए, जीवन का दूसरा पहलू उन्हें देखने को मिला। रुपये के साथ प्रतिष्ठा भी कुछ वस्तु होती है, लाला तिकड़मीलाल इस नतीजे पर पहुँच गये।

कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ और लाला तिकड़मीलाल घर पहुँचे। अपनी धर्मपत्नी को उन्होंने सारा किस्सा बतलाया। धर्मपत्नी कुछ समझी और कुछ नहीं समझी। पर लाला तिकड़मीलाल पर नाम कमाने की धुन सवार हो गई।

रात भर लाला साहब ने सपने देखे। कवि-सम्मेलन का दृश्य उनकी आँखों के आगे था और सभापति स्वयं लाला तिकड़मीलाल थे। कविगण उनको घेरे बैठे थे और चारों ओर उनकी प्रशंसा हो रही थी। दूसरे दिन सुबह उठकर लाला तिकड़मीलाल ने साबुन लगाकर अपना शरीर साफ किया, कपड़े बदले और शीशे में मुँह देखा। इसके बाद वे फटीशजी के घर पहुँचे।

फटीशजी हिन्दी के एक सुविख्यात कवि हैं। उन्होंने एक बार लाला तिकड़मीलाल से दस रुपये लिये थे, जिसे लौटाने का उन्होंने कभी नाम न लिया। जहाँ लाला तिकड़मीलाल ने रुपये माँगे, वहीं फटीशजी ने उन चुने हुए शब्दों में, जिनका प्रयोग साहित्यकारों ने कुन्जड़िनों तथा भटियारिनों के लिए ही छोड़ दिया है, लाला तिकड़मीलाल का गुणगान करना शुरू कर दिया; और लाला तिकड़मीलाल नालिश की धमकी देते हुए घर लौटे।

फटीशजी अपनी बैठक में बैठे हुए भंग घोट रहे थे। उन्होंने सड़क पर लाला तिकड़मीलाल को देखा और लपक कर उन्होंने बैठक का दरवाजा बन्द कर लिया।

तिकड़मीलाल ने आवाज दी--"फटीशजी !"

फटीशजी ने उत्तर दिया--"घर पर नहीं हैं।"

तिकड़मीलाल का मुख क्रोध से लाल हो गया; पर अपने क्रोध को दबाते हुए उन्होंने कहा--"बोल तो रहे हो और कहते हो घर नहीं हैं !"

कुछ देर तक चुप रहने के बाद फटीशजी ने उत्तर दिया--"हैं तो, लेकिन तुम से नहीं मिलेंगे।"

"अरे भाई, रुपया माँगने नहीं आया हूँ।" तिकड़मीलाल ने कहा।

"अच्छा तो फिर मिल सकते हैं; लेकिन भंग थोड़ी ही है, भंग न माँगना।" यह कहते हुए कविवर फटीश ने द्वार खोला।

कमरे भर में कागज और अखबार बिखरे पड़े थे। बीच में एक चटाई पड़ी थी, जिस पर फटीशजी डटे थे। लाला तिकड़मीलाल ने अपने कपड़ों

को देखा और फिर धूल जमी हुई चटाई को। फटीशजी लाला तिकड़मीलाल के मनोभावों को ताड़ गये। मुसकराते हुए उन्होंने कहा––"मालूम होता है, हरिजन मूवमेंट वालों ने तुम्हें भी देखा लिया।" और उन्होंने अपने अँगोछे से चटाई की धूल पोंछ दी। लाला तिकड़मीलाल बैठ गये।

भाँग छान कर फटीशजी सुव्यवस्थित हुए। उन्होंने तिकड़मीलाल से पूछा––"कहिए लालाजी, कैसे कष्ट उठाया ?"

तिकड़मीलाल ने मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा––"यों ही, सोचा कुछ आप से साहित्य के विषय में बात-चीत करूँ।"

"साहित्य !" फटीशजी ने अपनी आँखें फाड़ कर कहा––"साहित्य ! तुमसे और साहित्य से क्या सम्बन्ध ?"

सकपकाते हुए तिकड़मीलाल ने कहा––"भाई, मैं सोच रहा हूँ कि साहित्य की सहायता करना हर एक आदमी का धर्म है। आप साहित्य के धुरन्धर विद्वान् हैं––आपसे बढ़ कर मुझे कोई ऐसा आदमी नहीं दिखलाई देता, जिससे कुछ सलाह लूँ। इसीलिए आपकी सेवा में आया हूँ।"

फटीशजी ने अपनी छाती फुलाई, मत्था ऊँचा किया। खाँसा और खँखारा और फिर बोले––"खैर आपने अच्छा किया कि आप मेरे यहाँ चले आये। लोग साहित्य को समझते ही नहीं––तमीज़ हो तो समझें। मैंने तो लोगों की तबीयत ठीक कर दी है। ये बड़े-बड़े आचार्य और विद्वान् सब-के-सब मूर्ख हैं। हाँ, तो आप क्या चाहते हैं ?"

रुपयों का तकाजा कर-कर के लाला तिकड़मीलाल फटीशजी की प्रकृति से यथेष्ट परिचित हो गये थे। उन्होंने कहा––"मैं हिन्दी में एक पुरस्कार देना चाहता हूँ।"

"कैसा पुरस्कार ?"

"हिन्दी-कविता की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पर मैं पाँच सौ रुपये का पुरस्कार देना चाहता हूँ।"

फटीशजी ने लाला तिकड़मीलाल को गौर से कुछ देर तक देखा।

उसके बाद बोले--"लाला, डाक्टर से अपने दिमाग़ की परीक्षा करवा आये थे कि नहीं ?"

फटीशजी के इस प्रश्न पर लाला तिकड़मीलाल को बुरा नहीं लगा। मुसकराते हुए उन्होंने कहा--"मैं पागल नहीं हूँ फटीशजी। अब आप यह बतलाइए कि किस प्रकार काम किया जाय ?"

फटीशजी ने मुँह बनाते हुए कहा--"हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कविता-पुस्तक कौन है, इसका निर्णय कौन करेगा ? हिन्दी में जितने निर्णायक हैं, वे सब-के-सब परले सिरे के बेईमान, ढोंगी और बेवकूफ़ हैं। और अगर नहीं भी हैं, तो भी समझे तो जाते ही हैं। लेकिन इससे क्या ? तुम्हारे ऐसे मक्खीचूसों की टेंट से अगर पाँच सौ निकल कर किसी बेचारे कवि को मिल जायँ, तो इसमें प्रसन्नता की ही बात होगी।"

उसी दिन पत्रों में पुरस्कार की सूचना भेज दी गई। कवियों से उनकी पुस्तकों की दस-दस प्रतियाँ माँगी गई। पत्रों ने लाला तिकड़मीलाल के दान की प्रशंसा में कालम रँगे, सम्पादकों के पत्र लाला तिकड़मीलाल के चित्रों के लिए आये और कवियों ने उनके घर के चक्कर काटने आरम्भ कर दिये।

२

लाला घासीराम ने नमक की पुड़िया बाँधने के लिए रद्दी में खरीदे हुए अखबार का एक टुकड़ा फाड़ा ही था कि उनकी दृष्टि उस टुकड़े पर छपे हुए एक वाक्य पर पड़ गई। वाक्य इस प्रकार का था--"लाला तिकड़मीलाल की दानशीलता।" लाला घासीराम नमक देना भूल कर उस खबर को पढ़ने लगे। ग्राहक ने जल्दी मचाई, और कागज का दूसरा टुकड़ा फाड़ कर उन्होंने नमक बाँधा। इसके बाद वे अपने पुत्र दमड़ीलाल को दूकान पर बिठला कर तिकड़म के घर को चल दिये। तिकड़मीलाल अपने बैठके में गाव तकिये के सहारे बैठे थे और उनको कवियों का समूह घेरे बैठा था। एक सुकवि 'तिकड़म-पचीसी' का पाठ कर रहे थे और अन्य कवि वाह-वाह कर रहे थे। लाला घासीराम ने जो यह दृश्य देखा, तो सन्नाटे में आ

गये । घासीराम के प्रवेश करते ही तिकड़मीलाल उठ खड़े हुए और उन्होंने बड़े आदर के साथ कहा––"आइए चाचाजी !"

'चाचाजी' का उग्र-रूप देख कर कवि-समाज सकपकाया । तिकड़मीलाल ने आँख का इशारा किया और कवि लोग एक-एक करके खिसकने लगे । जब मैदान साफ हो गया, तब लाला घासीराम ने कहा––"क्यों तिकड़म ! अब क्या घर-बार फूँकने की सोची है ?"

"नहीं तो, आप से यह किसने कह दिया ?"

"किसने कह दिया ? अरे अखबारों में जो कुछ निकला है वह हमने भी पढ़ा है । इसी तरह से रुपया बाँटोगे तो कंगाल हो जाओगे, कंगाल ! भइया ने कौड़ी-कौड़ी करके जो माल-मता जोड़ा है, वह तुम साल-दो-साल में खतम करके भीख माँगोगे । बनिया का लड़का इतना गावदी निकला––राम राम !"

तिकड़मीलाल मुसकराए । घासीराम का चरण छूकर उन्होंने कहा––"चाचा, तुम निसाखातिर रहो, मैं एक पैसा-कौड़ी किसी को नहीं देने का । मैंने तो वह काम किया है कि नाम का नाम हो और रुपया भी पैदा करूँ ।"

"यह कैसे ?" लाला घासीराम के चेहरे पर स्पष्ट आश्चर्य की मुद्रा आ गई थी ।

"तो सुनिये । मैंने पाँच सौ रुपया देने को कहा है और हर एक कवि से दस-दस किताबें मँगवाई हैं । सत्तर कवियों ने किताबें भेजी हैं । इस तरह करीब सात सौ किताबें मेरे पास इकट्ठी हो गई हैं । इन सात सौ किताबों का दाम औसतन बारह सौ रुपया होता है । मैं किताबों के एजेण्ट से बात-चीत कर रहा हूँ––छः सौ रुपया में किताबें बिक जायँगी । इसमें मान लीजिए कि पाँच सौ रुपया दे भी दिया, तो सौ रुपया बच जायगा ।"

यह कह कर लाला तिकड़मीलाल ने अपने चाचा को किताबों से भरी अलमारियाँ दिखलाईं––और एजेण्ट से पत्र-व्यवहार दिखलाया ।

लाला घासीराम की आँखों में अश्रु उमड़ पड़े, उन्होंने अपने भतीजे के सिर पर हाथ रखते हुए कहा––"बेटा, तुम कुल उजागर पैदा हुए । तुम

हमारे कुल का नाम चलाओगे, हमें मालूम हो गया और देखो, दमड़ी को भी अपने साथ लेकर कुछ ऐसे ही करतब सिखलाओ।" और अपना आशीर्वाद देकर लाला घासीराम दूकान की ओर चल दिये।

३

अगर श्रीयुत टेवप्रसाद टेव का कहना था कि वे देव से बढ़ कर हैं, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। उन्होंने काफी रुपया पैदा किया था और मुक्तहस्त वे हिन्दी के कवियों तथा लेखकों को रुपया बाँट कर उन कंगाल कवियों तथा लेखकों पर काफी एहसान करते थे।

एहसान के बोझ से लदे हुए कवियों ने श्रीयुत टेवप्रसाद के नाम से कविताएँ लिखीं और लेखकों ने इनके नाम से लेख लिखे और एक दिन टेवप्रसाद 'महाकवि टेव' बन गये। महाकवि 'टेव' का दावा था कि उन्होंने साहित्य का निर्माण किया, कवियों तथा लेखकों को उन्होंने प्रोत्साहन दिया और हिन्दी-साहित्य में उन्होंने वह किया, जो किसी दूसरे ने नहीं किया। 'टेवजी' ने एक दिन अपनी कविताओं का संग्रह प्रकाशित कराया और उसका नाम रखा 'टेव-शतक'। 'टेव-शतक' की चारों ओर आलोचनाएँ हुईं। लोगों ने (लोगों से प्रयोजन टेवजी के एहसान से लदे हुए साहित्यिकों से है) फ़तवा दे दिया कि 'टेवजी' 'देवजी' से बढ़ गये हैं।

'तिकड़म-पुरस्कार' में टेवजी ने भी अपनी 'टेव-शतक' भेज दी। इधर हिन्दी-संसार में धूम मची हुई थी कि देखें 'तिकड़म-पुरस्कार' इस बार किसको मिलता है और उधर 'टेव-शतक' पर यह विवाद उठ खड़ा हुआ था कि हिन्दी में 'टेव' बड़े हैं या 'देव'। कुछ लोगों ने टेवजी का विरोध किया। इन विरोधियों में वे थे, जिन्हें 'टेवजी' ने कभी कुछ नहीं दिया था, और टेवजी ने कमर कस ली कि तिकड़म-पुरस्कार लेकर ही छोड़ेंगे।

टेवजी ने एक दिन लाला तिकड़मीलाल को अपने यहाँ आमंत्रित किया। स्वादिष्ट भोजन हुए, बिजली के पंखे के नीचे दोनों आदमी बैठे। 'टेवजी' ने बात आरम्भ की, "तिकड़मीजी, इस बार आपने निर्णायक कौन-कौन लोग रक्खे हैं?"

अपनी एक आँख दबाये हुए तिकड़मलाल ने कहा--"टेवजी, मुझे दुःख है कि मैं आप को निर्णायकों के नाम न बतला सकूँगा; क्योंकि ऐसे मामलों में निर्णायकों के नाम बहुत अधिक गुप्त रक्खे जाने चाहिए। आप जो कुछ चाहें, मुझसे बातें कर लें।"

'टेवजी' ने देखा कि मौका अच्छा है। वे बोले--"हाँ तिकड़मजी, आप ही सब कुछ हैं, आपने 'टेव-शतक' पर निकली हुई समालोचनाएँ तो पढ़ी ही होंगी।"

तिकड़मलाल मुसकराए--"हाँ साहब, समालोचनाएँ तो पढ़ डालीं और बड़ी अच्छी हैं; पर लोगों का कहना है कि आपके पक्ष में निकली हुई समालोचनाएँ निष्पक्ष भाव से नहीं लिखी गईं।"

टेवजी आवेश में काँपने लगे, गरज कर वे बोले,--"ऐसा कहने वाले लुच्चे हैं, शोहदे हैं, नमकहराम हैं। मेरे यहाँ से इतना रुपया पाया है और मेरी ही निन्दा करते हैं। उनकी बातों पर आप विश्वास क्यों करते हैं?"

"विश्वास तो नहीं करता; पर अविश्वास ही क्यों किया जाय? निर्णायकों के हाथ में पुस्तकें हैं, वे अपना निर्णय दे देंगे। आप साफ़-साफ़ कहिए कि आप क्या चाहते हैं?"

टेवजी ने साहस किया--"मैं यह चाहता हूँ कि वह पुरस्कार मुझको मिले।"

तिकड़मीलाल ने अपने मत्थे पर हाथ लगाया, "यह तो बड़ी मुश्किल बात है; लेकिन अगर आप एक बात मान लें तो शायद मसला हल हो जाय!"

"वह बात?" उत्सुकतापूर्वक टेवजी ने पूछा।

"वह बात यह है कि पुरस्कार आप को मिल जायगा; लेकिन पाँच सौ रुपये आप को न मिल कर निर्णायकों में सम्मति देने के लिए बाँट देने पड़ेंगे।"

"स्वीकार है!" तपाक के साथ टेवजी ने कहा।

४

उस दिन एक विराट् कवि-सम्मेलन था और सम्मेलन के सभापति थे श्रीमान् लाला तिकड़मीलाल। संयोजक श्रीयुत टेव थे और टेवजी ने बड़े परिश्रम के साथ बाहर से बड़े-बड़े कवियों को आमन्त्रित किया था।

मंच पर लाला तिकड़मीलाल विराजमान थे और वे फूलों से लदे हुए थे। उनको घेरे हुए बैठा था कवि-समुदाय। कवि-सम्मेलन आरम्भ हो गया।

कवि-सम्मेलन के समाप्त हो जाने के बाद सभापति महोदय उठे। उन्होंने कहा—"सज्जनो, इस वर्ष का तिकड़म-पुरस्कार हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि कविसम्राट् 'टेवजी' को दिया जाता है।" चारों ओर से करतल-ध्वनि होने लगी और लोगों ने लाला तिकड़मलाल की जय के नारे लगाये।

एकाएक कवि-सम्मेलन में सन्नाटा छा गया। मंच पर एक हाथ से लाला तिकड़मलाल का हाथ पकड़े हुए और दूसरे हाथ में चप्पल लिये हुए कविवर फटीशजी आसीन थे और ऊँचे स्वर में कह रहे थे—"भाइयो, इस तिकड़मलाल ने कवियों से किताबें मँगा कर छः सौ रुपये में बेच ली हैं, और टेवजी को इसने एक पैसा नहीं दिया। यह बड़ा धूर्त और जालिया है। जिस एजेण्ट के हाथ इसने किताबें बेची हैं, वह मय इसके पत्रों के यहाँ पर मौजूद है।"

फिर क्या था, अगर पुलिस पाँच मिनट और देर कर देती तो लाला तिकड़मलाल घासीराम से रात का किस्सा एक महीने तक न कह पाते।

नाज़िर मुंशी

ज्ञान कुरूपता है और अज्ञान सौन्दर्य है ! अगर आप इस बात को बिना किसी तर्क के माने लेते हैं--और मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि तर्क करके आप मुझसे जीतेंगे नहीं--तो मैं आप से कह सकता हूँ कि लड़कपन जीवन का सौन्दर्य है। लड़कपन के कुछ थोड़े-से वर्षों में ही तो हम वास्तविक सुख का उपभोग करते हैं, उत्सुकता के उन इने-गिने पत्रों में ही हम वसुधा की अक्षय सुषमा को देख पाते हैं; फिर उसके बाद--ज्ञान की भयानक कुरूपता !

उड़ने वाले सफ़ेद बादल से दौड़ने में होड़ लगाना, तितली के साथ खेलने का प्रयत्न करना, तारों में पहुँचने की कल्पना करना--यह सब-का-सब एक मधुर स्वप्न की आह-भरी धुँधली-स्मृति के रूप में बदल चुका है। मैं जीवन देख रहा हूँ और मुझे कुरूपता के साथ खेलना पड़ता है। कभी-कभी लड़कपन की भी याद आ जाती है; वे विगत स्वप्न पल भर के लिये वास्तविकता बन कर लौट पड़ते हैं। चाहता हूँ कि वे सपने मिटें न। पर इतना चाहते ही सपने उड़ जाते हैं, मुझे कुछ चकित-सा, कुछ भूला-सा और कुछ विक्षुब्ध-सा छोड़ कर !

उन्हीं सपनों में एक सपना नाज़िर मुंशी का भी था। एक दिन वह सपना जीवन की एक भयानक कुरूपता प्रदर्शित करता हुआ सदा के लिए नष्ट हो गया, और उसके नष्ट हो जाने का मुझे दुःख है। मैं कहता हूँ कि लड़कपन के सपनों को सपना बना कर ही रक्खा जाना चाहिए, वास्तविकता की कसौटी पर उन सपनों को कसना उन्हें सदा के लिए नष्ट कर

देना है--सौन्दर्य की कुछ रेखाओं को निर्दयतापूर्वक मिटा कर एक-से-एक भयानक कुरूपताओं जो ढूँढ़ निकालना है।

* * *

पचीस वर्ष बीत गये--पल-पल, दिन-दिन, महीना-महीना और साल-साल कटते हुए। आज किसी की बारात में जाना अखर जाता है; अगर जाता हूँ तो मजबूरन। बाजों की आवाजें अब मेरे कान पर प्रहार की तरह पड़ती हैं, लोगों को विवाह के उपलक्ष्य में जब प्रसन्न देखता हूँ, तब सोचता हूँ कि ये कितने मूर्ख हैं। नाच-रंग को पल भर का नशा समझने लग गया हूँ, जिसका खुमार हमें जीवन के युद्ध में अधिक से-अधिक निर्बल बना देता है; पर आज के पचीस वर्ष पहले मैं लड़का था। उन दिनों जब बारात में चलने का निमंत्रण मिलता था, तब चित्त प्रसन्न हो जाता था। महीनों से तैयारियाँ करता था, एक-एक दिन गिनता था, बारात में चलने की प्रतीक्षा में। जीवन की कुरूपता तथा असफलता ने उस समय तक मेरे कौतूहल का, मेरी उत्सुकता का गला न घोंटा था। वह मेरा लड़कपन था, मेरे जीवन का सौन्दर्य था।

ठीक पचीस वर्ष की बात है जब मैं एक बारात में गया था। उसी बारात में पहले-पहल नाज़िर मुंशी को देखा था। बड़े आदमियों की बारात थी, लड़के का बाप डिप्टी कलक्टर था और लड़की का बाप सब-जज। बाराती थे वकील, बैरिस्टर, रईस, डाक्टर और ऐसे ही लोग।

उस बारात में कुछ गरीब आदमी भी थे, कोई ऐसे भिखमंगे तो नहीं, पर लड़के वाले और लड़की वाले से तुलना करने पर गरीब; और उन गरीब आदमियों में नाज़िर मुंशी भी थे। पर उन दिनों मानो पचीस वर्ष पहले रिश्तेदारी में रुपये पैसे का भेद-भाव नहीं देखा जाता था। नाज़िर मुंशी भी बाराती थे, उतने ही इज्ज़तदार और प्रतिष्ठित, जितने लड़के के पिता डिप्टी साहब। मझोले कद के गोल-मटोल आदमी थे, मूँछें बड़ी-बड़ी और तोंद निकली हुई।

नाज़िर मुंशी की ओर मैं क्यों आकर्षित हुआ? लड़कों की भीड़ उन्हें

क्यों हरदम घेरे रहती थी ? आफिस में नाज़िर मुंशी क्यों सब के आगे बिठलाये जाते थे ? इन प्रश्नों का एक उत्तर है—नाज़िर मुंशी हँसमुख आदमी थे। किसी भी आदमी को बातों में उड़ा देना उनके बाएँ हाथ का खेल था। जहाँ नाज़िर मुंशी थे, वहाँ हँसी का ठहाका था। हाज़िर-जवाबी उनका जन्मसिद्ध अधिकार था।

उस बारात में एक अप्रिय घटना घट गई। सुबह बरफ नहीं आई और डिप्टी साहब सब-जज साहब पर नाराज हो गये। लगे कहने, और लुक-छिप कर नहीं, बल्कि खुले आम, जैसा कि लड़के के पिता को अधिकार प्राप्त है—"मैंने समझा था पढ़े-लिखे आदमी हैं, शरीफ़ हैं ! यह नहीं जानता था कि पूरे मक्खीचूस, पैसे को इस बुरी तरह पकड़ते हैं। रुपये-दो-रुपये के पीछे हमारी आराम-तकलीफ़ का ख्याल तक नहीं। यह जानता होता कि ऐसे कमीनों से वास्ता पड़ेगा तो इनके यहाँ शादी न करता।"

सब-जज साहब ने जब यह सुना कि ज़रा बरफ न पहुँचने पर डिप्टी साहब वाही-तबाही बकने लगे, तो उन्हें भी गुस्सा आ गया। सुबह जिन्स तो भिजवा दी, लेकिन फिर कोई आदमी, 'आप को कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?' 'किसी चीज़ की ज़रूरत है ?' आदि-आदि प्रश्न पूछने न आया।

डिप्टी साहब का पारा चढ़ता ही गया। शाम के समय नाश्ता नौकरों के हाथ आया और न सब-जज साहब ही बारातियों को झाँकने आये और न उनके लड़के न रिश्तेदार। यह उपेक्षा डिप्टी साहब को असह्य हो गई। नाश्ता उन्होंने वापस भिजवा दिया और बारातियों को कूच का हुक्म सुनाया गया। फ़ौज ने असबाब कसना शुरू किया। मामला इतना अधिक बढ़ गया, और डिप्टी साहब तथा सब-जज साहब अपनी-अपनी ज़िद पर अड़े रहे।

क्राइसिज़ (Crisis) पर विजय पाई नाज़िर मुंशी ने; लड़कों को एकत्र करके उन्होंने सब-जज साहब के मकान पर धावा बोल दिया। बारातियों को इस बात का पता तक नहीं, सब लोग इतने अधिक व्यस्त थे।

सब-जज साहब अपने दरवाज़े बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उनको घेरे बैठे थे उनके रिश्तेदार व अन्य दोस्त। सब-जज साहब बीच-बीच में कहते

जाते थे--"वही अकेले इज्ज़तदार नहीं हैं। लड़की की शादी की है, इज्ज़त नहीं बेची है। जाते हैं तो जाने दो!"

उनके दरवाजे पहुँच कर नाज़िर मुंशी ने हम लोगों को एक लाइन में खड़ा कराया, फिर उन्होंने सब-जज साहब को बड़े अदब के साथ झुक कर एक लम्बा-चौड़ा सलाम किया। नाज़िर मुंशी के पहुँचते ही सब-जज साहब अकड़ कर बैठ गए। उन्होंने नाज़िर मुंशी को उसी दृष्टि से देखा, जिस दृष्टि से बादशाह शत्रु के राजदूत को देखता है।

पर नाज़िर मुंशी ने सब-जज साहब से कोई बात-चीत नहीं की। इसके स्थान पर सब-जज साहब की तरफ़ इशारा करके उन्होंने हम लोगों से कहना आरम्भ किया--"लड़को! सब-जज साहब यही हैं, बड़े स्वाभिमानी और बड़े इज्ज़तदार! अँगरेज़ी तहज़ीब के कायल हैं, और अगर देखा जाय, तो अँगरेज़ी तहज़ीब ऐसी कोई बुरी भी नहीं है। ये सब-जज साहब हमारे मेज़बान हैं, इन्होंने हमें--यानी बारात को अपने घर पर बुलाया है। और मेरे प्यारे बच्चो, तुम्हारे बुज़ुर्ग सब-जज साहब से नाराज़ होकर चले जा रहे हैं; इसमें तुम्हारे बुज़ुर्गों की ही गलती है। माना कि हिन्दुस्तान की पुरानी तहज़ीब के मुताबिक मेज़बान का यह फ़र्ज है कि वह मेहमान की उचित-अनुचित चुपचाप सह ले, और अपने घर पर आमंत्रित मेहमान की सेवा करे; लेकिन अँगरेजी तहज़ीब के मुताबिक कभी भी बेजा बात न बर्दाश्त करनी चाहिए। गो कि मैं हिन्दुस्तानी तहज़ीब का कायल हूँ, क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी ही हूँ और हिन्दुस्तानियों के बीच में ही मुझे रहना है; और मेरे प्यारे लड़को! तुम्हारे लिए भी मेरी नेक सलाह यही है कि तुम हिन्दुस्तानी तहज़ीब को ही अपनाना; लेकिन तुम्हें सब-जज साहब की उचित पर डटे रहने की प्रवृत्ति पर उनकी इज्ज़त करनी चाहिए। तुम सब लोग झुककर सब-जज साहब को सलाम करो और फिर अपने बुज़ुर्गों के साथ यहाँ से रवाना हो जाओ!"

नाज़िर मुंशी की स्पीच समाप्त हुई; लड़कों ने झुक कर सब-जज साहब को सलाम किया।

नाजिर मुंशी चलने के लिए घूमे ही थे कि सबजज साहब ने खुद उठ कर उनका हाथ पकड़ लिया। बड़े आदर के साथ उन्होंने नाज़िर मुंशी को और हम लोगों को बिठलाया। अपने लड़के को बुला कर उन्होंने मिठाई, फल, नमकीन आदि वस्तुएँ मँगवाईं। हम लोगों ने नाश्ता करना शुरू किया, उधर सबजज साहब मय अपने साले, बहनोई, चाचा, फूफा, मामा, समधी, दामाद के डिप्टी साहब को मनाने चले।

उस दिन रात के समय जब महफ़िल जमी, तो जहाँ देखो वहाँ नाज़िर मुंशी ही नजर आते थे। वेश्या की ओर संकेत करते हुए सबजज साहब ने कहा—"नाज़िर मुंशी, अपनी बहन को पान दे आओ!" और नाज़िर मुंशी ने जवाब दिया—"हुजूर का मामा बनने से मुझे कतई इन-कार है!" लोग हँस पड़े। डिप्टी साहेब ने कहा—"नाज़िर मुंशी! सुना है कि समधिन ने आज शाम तुम्हें अपने हाथों मिठाई खिलाई! कैसी हैं?" और नाज़िर मुंशी ने तड़ाक से कहा—"उनकी शकल हुजूर की शक्ल से बिलकुल मिलती-जुलती है!" नाज़िर मुंशी के बड़े भाई डिप्टी साहब के बहनोई थे।

* * *

और पचीस वर्ष बीत गये! प्रत्येक दिन आशा बनकर आया और निराशा बनकर निकल गया। इन पचीस वर्षों में बहुत कुछ देखा, उससे भी अधिक सुना; लेकिन सीखा केवल इतना कि ज्ञान कुरूपता है और अज्ञान सौन्दर्य! जीवन के रहस्यों को सुलझाने में नित्य ही मैं उलझता गया, और उस उलझन से घबराकर मैं सुख पर विश्वास छोड़ बैठा, ज्ञान पर विश्वास छोड़ बैठा, और यहाँ तक कि अपने पर भी विश्वास छोड़ बैठा। लड़कपन के सपनों के धुँधले सौन्दर्य को, जो एक अज्ञात पुलक की भाँति मेरे अन्तर में छिपा है, धीरे-धीरे मैं नष्ट करता जा रहा हूँ! एक के बाद एक के सपने मिटते जा रहे हैं और सात महीने हुए कि नाज़िर मुंशी वाला सपना भी सदा के लिए मिट गया।

अकसर नाज़िर मुंशी के विषय में मैं सोच लिया करता था। जितना

जानता था, वह सब याद था; एक बात भी तो नहीं भूला था। हाँ, अगर कुछ भूल गया था तो वह, जिसे मैंने कभी जाना ही न था। नाजिर मुंशी का नाम क्या था——उस बारात में इसे जानने का अवसर ही न मिला था। नाम तो वह साधन है, जो एक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से पृथक् करता है, और इस काम के लिए 'नाज़िर मुंशी' ही काफ़ी था। वह कहाँ रहते हैं, यह भी नहीं मालूम था; पर बड़ी प्रबल इच्छा थी कि एक बार फिर नाज़िर मुंशी से मिलूँ। एक बार फिर उसी बारात वाले सुख का अनुभव करूँ !

यह इच्छा भी पूरी हो गई। इस बार डिप्टी साहब के लड़के का नहीं, बल्कि उनके लड़के के लड़के का विवाह था। बारात में जाना ही पड़ा। इधर कई वर्षों से किसी बारात में न गया था, जाने की इच्छा भी न हुई थी; पर डिप्टी साहब का अनुरोध था, उससे भी प्रबल आग्रह था डिप्टी साहब के लड़के का, और जिस लड़के का विवाह था, वह तो मुझे ले चलने की ज़िद ही पकड़ गया था।

जाना पड़ गया। इन पचीस वर्षों में डिप्टी साहब मनुष्य की कोटि से उठकर देवता की कोटि में आ गये थे। वे लखपती हो गये थे। उनका लड़का एक्ज़ीक्यूटिव इन्जीनियर था और उनका नवासा, जिसका विवाह था, आई० सी० एस० में आ गया था। और लड़की के पिता कमिश्नर थे।

मैं डिप्टी साहब के घर पहुँचा। आमन्त्रित अतिथि एकत्रित हो रहे थे। कार से उतरा ही था कि मैं चौंक पड़ा। मेरा स्वागत करने के लिए डिप्टी साहब और इन्जीनियर साहब दोनों ही मेरी कार तक आये। उनके पीछे-पीछे लगभग बीस आदमी और थे, सभी डिप्टी साहब के रिश्तेदार और प्रायः सभी उनके कृपापात्र। कार से उतरकर मैंने डिप्टी साहब और इन्जीनियर साहब का अभिवादन किया; पर मैं उनकी ओर न देख रहा था, मैं देख रहा था दूर, पर सब से पीछे खड़े हुए और एक आदमी की ओर।

मैं चला, धीरे-धीरे डिप्टी साहब नौकर से मेरा असबाब उतरवाकर रखवाने में लग गये, इन्जीनियर साहब मेरे आने की सूचना देने घर के अन्दर चले गये और अन्य रिश्तेदार अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये। पीछे

खड़े हुए आदमी के पास पहुँच कर मैंने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"नाज़िर मुंशी !"

वह आदमी मेरी ओर घूम पड़ा। उसने खींसें निपोर दीं—"अरे क्या आप मुझे पहचानते हैं ?"

"पचीस साल पहले की बात याद है जब तुम इञ्जीनियर साहब की बारात में गये थे ?"

"हाँ, अच्छी तरह याद है। तब तो आप बिल्कुल लड़के ही रहे होंगे ! अरे आप. . .के साहबज़ादे तो नहीं हैं"

"आपका कयास ठीक है !"

नाज़िर मुंशी मेरे पास से जाना चाहते थे, पर मैंने उनका हाथ पकड़ लिया। अपने साथ उन्हें मैं रईसों की महफिल में ले गया, अपनी बगल में मैंने उन्हें बिठलाया।

डिप्टी साहब मेरा असबाब रखवा कर आ गये, इञ्जीनियर साहब घर में मेरे आने की सूचना देकर आ गये, आई० सी० एस०, लड़का मुझसे मिलने आ गया। हम सब बैठे थे, बातें चल रही थीं और साथ-साथ व्हिस्की के दौर। नाज़िर मुंशी आँखें बन्द किये चुप बैठे थे। कभी-कभी वे ललचाई आँखों से व्हिस्की से भरे गिलासों को देख अवश्य लेते थे; पर वहाँ बैठे हुए लोगों के लिए और शराब का गिलास भर कर देने वाले नौकर तक के लिए नाज़िर मुंशी का कोई अस्तित्व ही न था। एकाएक इञ्जीनियर साहब की नज़र नाज़िर मुंशी पर पड़ी। मुसकराते हुए उन्होंने कहा—"नाज़िर मुंशी ! चुप कैसे हो ?. . .अरे कल्लू ! नाज़िर मुंशी को भी एक पेग दे !"

इस बार सब लोगों ने नाज़िर मुंशी को देखा, कल्लू ने भी। व्हिस्की का पेग नाज़िर मुंशी को दिया गया। एक घूंट में उन्होंने गिलास खाली कर दिया, आँखों में चमक आ गई।

इञ्जीनियर साहब ने फिर कहा—"आज नाज़िर मुंशी चुप हैं।"

मुसकराने का प्रयत्न करते हुए नाज़िर मुंशी ने उत्तर दिया—"इसलिए कि आप लोगों को मुहल्ले के धोबी न सतावें !"

सब लोग हँस पड़े। और फिर नाज़िर मुंशी का मजाक शुरू हुआ।

बारात चली, स्पेशल ट्रेन में। कुछ डब्बे सेकण्ड क्लास के थे, कुछ इण्टर के और कुछ थर्ड के। सेकण्ड क्लास में थे डिप्टी साहब के घर वाले और अमीर बराती, इण्टर क्लास में थे गरीब रिश्तेदार और थर्ड में थे नौकर। नाज़िर मुंशी भी इण्टर में थे।

सफ़र लम्बा--अखर जाने की बात थ:। सुबह को ब्रिज खेल कर हमने समय काटा और दोपहर के बाद का समय हम लोगों को काटने लगा। एकाएक आई० सी० एस० लड़का बोल उठा--"नाज़िर मुंशी को क्यों न यहाँ बुला लिया जाय ?" यह बात सब लोगों को पसन्द आ गई।

दूसरे स्टेशन पर नाज़िर मुंशी आये और चहल-पहल मच गई। बातों ने रंग पकड़ा और चुने हुए फिकरे सुनने को मिले। लोग हँस रहे थे और मैं नाज़िर मुंशी की ओर देख रहा था। नाज़िर मुंशी मजाक कर रहे थे, केवल इसलिये कि लोग आशा करते थे कि वे मजाक करेंगे, और मजाक करना उनका कर्तव्य था; पर उनके मजाक करने में न तो कोई उल्लास था, न उनके अन्तर की कोई भावना थी।

चाय का समय हो गया और हम लोग चाय पर डट गये। पर नाज़िर मुंशी अलग बैठे रहे, चाय में शरीक होने को किसी ने उनसे पूछा भी तो नहीं। मैंने यह देखा और मुझ से न रहा गया। मैंने कहा--"नाज़िर मुंशी चाय पिओ !" और सबों ने एक स्वर से नाज़िर मुंशी को आमंत्रित किया। कुछ संकोच के साथ वह हम लोगों में सम्मिलित हो गये।

चाय के बाद हम लोगों में फिर बातें शुरू हुईं, और उस बातचीत में नाज़िर मुंशी का कोई अस्तित्व न रहा। नाज़िर मुंशी कभी-कभी हम लोगों को देख लेते थे और फिर उँघने लगते थे। दूसरे स्टेशन पर वह अपने डब्बे में चले गये।

* * *

बारात लौट आई, कोई खास घटना न घटी। बड़े लोगों की बारात थी, प्रबन्ध बहुत सुन्दर और खातिरदारी पूरी। जो कुछ हुआ, वह मशीन

की भाँति। बड़े आदमी एक-दूसरे से मिले; उन लोगों में बातें भी हुईं, नपी-तुली और उड़ती हुई। छोटे आदमियों ने बड़े आदमियों का मुँह देखा, मौका ढूँढ़ा कि एक आध बात वे भी कर सकें और इस प्रयत्न में दो-एक सफल भी हो गये।

बारात के बिदा होने के बाद हम लोग भी विदा होने लगे। दूसरे दिन सुबह मैंने भी चलना निश्चित किया। सुबह जाने के पहले मैंने नाज़िर मुंशी को ढूँढ़ निकाला। उस समय नाज़िर मुंशी डिप्टी साहब के पीछे-पीछे उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए बगीचे में टहल रहे थे।

मैंने डिप्टी साहब से कहा—"चचा, मैं अब जा रहा हूँ।"

"अरे इतनी जल्दी? दो-एक दिन तो ठहरो बेटा!"

"नहीं, मुझे कुछ जरूरी काम है!"

डिप्टी साहब के बहुत आग्रह करने पर भी जब मैं अपनी बात पर अड़ा रहा, तब वे मेरे जाने की सूचना देने स्वयं घर में गये। नाज़िर मुंशी अकेले रह गये। मैंने उनके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"नाज़िर मुंशी!"

चौंक कर नाज़िर मुंशी पीछे हटे। हाथ जोड़कर वे मेरे सामने खड़े हो गये—"कहिये हुज़ूर!"

नाज़िर मुंशी के इस व्यवहार ने मेरी आत्मा पर गहरा प्रहार किया। सम्हलते हुए मैंने कहा—"नाज़िर मुंशी! हम लोगों ने तुम्हारा काफ़ी अपमान किया है—"

मेरी बात काटते हुए नाज़िर मुंशी ने कहा—"कैसा अपमान हुजूर? मैं तो आप लोगों का गुलाम हूँ!"

उस समय मैंने देखा कि नाज़िर मुंशी की आत्मा मर चुकी है। दिल में एक ठेस-सी लगी। मैंने देखा कि मेरा एक सुन्दर सपना टूटा जा रहा है। मैंने एक प्रयत्न फिर किया, उस सपने को बचाने का। मैंने कहा—"नाज़िर, मुंशी, तुम हमारे रिश्तेदार हो, हमारे बुज़ुर्ग हो! क्या तुम्हें हम लोगों का व्यवहार अपमानजनक नहीं लगा?"

नाज़िर मुंशी ने दाँत निकाल दिये—"हुज़ूर क्या कहते हैं? मैं तो

आप लोगों का खिदमतगार हूँ। आप लोग बड़े आदमी हैं, भला मैं आप लोगों की बराबरी कैसे कर सकता हूँ ?"

उस समय मेरे सामने धन का पिशाच अपनी सारी पाशविकता, कुरूपता तथा शक्ति के साथ खड़ा हो गया। उस समय मैंने देखा कि जिसे हम मनुष्यता कहते हैं, वह धन के पिशाच के पैरों पर झुकी हुई उसकी पूजा कर रही है। मैं एकाएक सिहर उठा।

डिप्टी साहब लौट आये। आते ही उन्होंने नाज़िर मुंशी से कहा—"नाज़िर मुंशी, भैया के ड्राइवर को बुला दो और भैया के सामान को ठीक तरह से रखवा दो।"

"अभी सब हुआ जाता है हुजूर!" इतना कहकर नाज़िर मुंशी वहाँ से चलने के लिए घूमे!

उस समय तक मैं अपने आपे में आ गया था, या अपना आपा मैं पूरी तरह से खो चुका था। मैंने नाज़िर मुंशी को बुला कर कहा—"नहीं, मेरा सामान सब ठीक है। आपको तकलीफ़ करने की कोई ज़रूरत नहीं।" फिर मैंने डिप्टी साहब से कहा—"चाचा, मेरी आप से एक प्रार्थना है। इस समय मेरे पास रुपया नहीं है, इसलिए आप मेरी तरफ से नाज़िर मुंशी को एक हज़ार रुपया देकर कह दें कि वे फिर कभी आपके यहाँ न आवें। रुपया मैं घर पहुँचते ही आपको भिजवा दूँगा।" यह कहकर मैं वहाँ से तेज़ी के साथ चला आया।

यदि डिप्टी साहब ने मुझे पागल समझा, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि वे सदा मुझे पागल समझते रहे हैं; पर नाज़िर मुंशी ने भी मुझे पागल समझा, और नाज़िर मुंशी ने ही क्यों, मैं स्वयं अपने को पागल समझ रहा हूँ। आखिर उस दिन मैंने यह सब क्यों कह डाला ? हम सब नाज़िर मुंशी हैं, हम सब धन के गुलाम हैं। हम सबों की आतमा को धन के पिशाच ने अपने पैरों के नीचे कुचल रक्खा है। नाज़िर मुंशी में तो संसृति का एक बहुत ही साधारण नियम प्रदर्शित था। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि वह नियम कुरूप और भयानक है।

पराजय अथवा मृत्यु

आप लोगों में कितने अपने जीवन का लक्ष्य जान सके हैं ? मेरा आपसे यह प्रश्न है; पर इस प्रश्न के पहले एक प्रश्न और उठता है—क्या जीवन का कोई लक्ष्य भी है ?

मैं जानता हूँ कि आप इन प्रश्नों क कोई उत्तर नहीं दे सकते; इन प्रश्नों का उत्तर आज तक किसी ने दिया भी नहीं। यह बात नहीं कि इन प्रश्नों पर किसी ने विच र न किया हो; यह बात भी नहीं कि किसी ने इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न न किया हो। अनादि-काल से मनुष्य प्रकृति तथा जीवन के गूढ़ रहस्यों को समझने में व्यस्त रहा है; फिर भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सका। धारा में बहते हुए धारा की गति को देखना और समझना अथवा धारा का विश्लेषण करना असम्भव है; जीवित रहकर जीवन को समझना भी असम्भव है। जीवन को समझने के लिए हमें जीवन से पृथक् होकर उसे देखना पड़ेगा, और जीवन से पृथक् होना ही अस्तित्व का विनाश है—मृत्यु है।

भुवनेश्वरी देवी एम० ए० ने आत्महत्या कर ली—लोगों ने यह खबर सुनी और उन्हें आश्चर्य हुआ। आश्चर्य मुझे भी हुआ; पर वह आश्चर्य दूसरी ही कोटि का था। लोगों का आश्चर्य दो दिन का था, उनके आश्चर्य में केवल कौतूहल था, इससे अधिक कुछ नहीं। वह कौतूहल एक बुलबुले की भाँति उठकर मिट गया; पर मेरे आश्चर्य में ज्ञान की अपूर्णता और सीमा का अभिशाप था, जिन्हें मिटाने के लाखों प्रयत्न करके भी नहीं मिटा सकता।

भुवनेश्वरी देवी नगर के प्रमुख महिला-विद्यालय की प्रधानाध्यापिका थीं। साथ ही वे विदुषी थीं, और सामाजिक क्रान्ति पर विश्वास करती थीं। एकहरे बदन की लम्बी-सी सुडौल स्त्री, रंग सोने का-सा और मस्तक ऊँचा; आँखों में चमक, और वाणी में दृढ़ता से भरी मिठास। मैंने सौन्दर्य देखा है और मेरे मित्र जिनमें अधिकांश कलाकार हैं, मुझे सौन्दर्य का पारखी समझते हैं। यदि मेरे मित्रों की समझ ठीक है, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भुवनेश्वरी को मैं सुन्दरता की रानी समझता था। पर एक बात और बतला दूँ; भुवनेश्वरी की सुन्दरता एक अदोष प्रस्तर-मूर्ति की सुन्दरता थी, स्पन्दन-रहित और निर्जीव !

भुवनेश्वरी देवी से मैं कई बार मिला था; पर कभी मुझे उसकी आँख से आँख मिलाने का साहस नहीं हुआ। भुवनेश्वरी देवी कुमारी थीं और जहाँ तक मेरा अनुभव है, उन्होंने अपना कौमार्य रक्षित रक्खा था। भुवनेश्वरी देवी का जीवन साधना और विश्वास का सम्मिश्रण था। स्त्री और पुरुष में अधिकारों के सम्बन्ध में जो युद्ध अनादि काल से होता आ रहा है, उस युद्ध में भुवनेश्वरी देवी स्त्री-जाति की प्रतिनिधि होकर आई थीं। उनमें वीरता थी और लगन, उनमें साहस था और आत्म-विश्वास !

किन क्षणिक घात-प्रतिघातों और किन क्षणिक भावनाओं से मनुष्य-जीवन शासित है, आत्म-हत्या के पहले भुवनेश्वरी देवी द्वारा लिखे हुए पत्र से उन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह पत्र किसी के नाम नहीं लिखा गया, वह पत्र भी तो नहीं कहा जा सकता है। वह केवल एक बयान है—दुनिया के सामने—और इसलिए उस पत्र को यहाँ देना मैं अनुचित नहीं समझता ! पत्र इस प्रकार है—

"जीवन की अन्तिम यात्रा पर जा रही हूँ। इस यात्रा का निश्चय मैंने बहुत सोच-विचार के बाद किया है। इतना विश्वास दिलाती हूँ कि मैं बहुत शान्त और सुव्यवस्थित हूँ। इधर कुछ दिनों से मैं बहुत अस्त-व्यस्त रही हूँ, एक असह्य पीड़ा मुझे पागल बनाये रही है। मेरे

सामने प्रश्न रहा है--'पराजय अथवा मृत्यु ?' और मैंने आज निर्णय कर लिया है। इसी से तो मैं शान्त हूँ--मैं जान गई हूँ कि शान्ति मृत्यु में ही है, जीवन में नहीं। जीवन तो स्वयं पराजय है !

"मैं अन्तिम यात्रा पर जा रही हूँ। मुझे मरना ही चाहिए ! मेरे सारे विश्वास चूर-चूर हो चुके; जो व्यक्तित्व मैंने बनाया था, वह नष्ट हो चुका। एक नये व्यक्तित्व ने मुझ में जन्म लिया है, निर्बल और विजित --यह व्यक्तित्व मेरे लिए असह्य है !

"आज मेरे जीवन की घटनाएँ एक के बाद एक सामने आ रही हैं; पर मुझे जीवित रहने के लिए वे प्रेरित नहीं कर सकतीं। मैंने अपना एक लक्ष्य बनाया था, मैंने अपना एक मार्ग निर्धारित किया था। वह लक्ष्य बराबर मेरे सामने रहा है, उस मार्ग पर अभी तक मैं रत हूँ। क्या मुझे विरत होना पड़ेगा ? यही प्रश्न मेरे सामने है। आज उस प्रश्न का उत्तर अपने सारे साहस और अपनी साधना के साथ देने बैठी हूँ।

"उन दिनों मैं लड़की थी, स्कूल में पढ़ती थी और सारा संसार अपनी सुन्दरता, अपनी आशा-अभिलाषा और अपनी मोहिनी के साथ मेरे सामने था। मैं आगे बढ़ रही थी, किस प्रसन्नता और किस उत्साह के साथ ! मैं जानती थी कि मैं कुछ काम करने आई हूँ। यह काम क्या है--इसका तो मुझे उन दिनों आभास न था; पर एक आन्तरिक प्रेरणा आगे बढ़ने की और कुछ करने की अवश्य थी। संसार के ज्ञान का अक्षय भाण्डार मेरे लिए खुला था।

"धीरे-धीरे मैं बड़ी होती गई और जीवन की सुन्दरताएँ एक-एक करके कुरूपताओं में बदलती गईं। मैं स्त्री थी, भावुक थी, और मुझमें विश्वास था।

"मैंने देखा कि विश्व कपट, धूर्तता और स्वार्थ के मिश्रित संग्रह का दूसरा नाम है; मैंने देखा कि जिसे संसार त्याग, बलिदान तथा भावना कहता है, वह निर्बलता का द्योतक है और निर्बलता गुलामी है। पुरुष स्त्री को गुलाम नहीं बनाये है, स्त्री स्वयं अपनी इन सद्भावनाओं के कारण

गुलाम बनी है। यदि गुलामी नहीं करना है, तो शक्तिशाली बनना आवश्यक है, और शक्तिशाली बनने के लिए स्वार्थ, बर्बरता तथा जाल-फ़रेब की आवश्यकता है। मैं उन दिनों कालेज में पढ़ती थी; संसार में स्त्री-जागृति की लहर फैली थी। स्त्री होने के नाते मैंने भी स्त्री-सुधार के काम में हाथ लगाया, मनुष्यता के उपकार के लिए मैंने अपना जीवन भेंट कर दिया। मैं पुरुष जाति की शत्रु हो गई, स्त्री को गुलामी से ऊपर उठाना, उसे उसके अधिकारों का ज्ञान कराना—यह मेरा एक मात्र कार्यक्रम हो गया।

"मैंने समाज का अध्ययन किया, मैंने देखा कि उसकी सहनशीलता तथा उसके असीम त्याग के कारण ही पुरुष स्त्री को घृणित जीवन व्यतीत करने को बाध्य करता है। मैंने वेश्याएँ देखी हैं, विधवाएँ देखी हैं। पुरुष स्वामी है, वह समर्थ है! यह क्यों?

"पुरुष स्त्री का आदर नहीं करता, वह उस पर अपना अधिकार समझता है। जननी होते हुए भी स्त्री कितनी निरीह है, कितनी निराश्रय है! जिस पुरुष के लिए स्त्री सर्वस्व न्यौछावर कर देती है, असह्य यातनाएँ सहती हैं, वही पुरुष पशु के समान हृदयहीन प्राणी है। जब तक स्त्री अपना अधिकार न समझ लेगी, जब तक स्त्री पुरुष के सर पर पैर न रख सकेगी, तब तक वह गुलाम रहेगी—इतना मुझे विश्वास है!

"मैंने यह सब देखा और काम करना आरम्भ कर दिया। यह काम करने के लिए महिला-विद्यालय से अच्छा कोई स्थान नहीं है, जहाँ लड़कियाँ पढ़ने आती हैं। मेरे माता-पिता ने मेरा विवाह करना चाहा; पर मैंने अस्वीकार कर दिया। एक-से-एक सम्पन्न पुरुष मुझ से प्रेम-भिक्षा माँगने आये; पर मैंने उन्हें ठुकरा दिया? मेरे पैर के नीचे अभिमानी पुरुष-जाति के धन, शक्ति और ज्ञान, मस्तक नमा कर लौट गये; पर मैं अपने मार्ग से विरत नहीं हुई।

"पर एक दिन मेरी सारी तपस्या, मेरी सारी साधना को एक भयानक धक्का लगा। आज के छै महीने पहले एक युवक अपनी छोटी बहन को मेरे

विद्यालय में प्रवेश कराने आया ।

"उसी दिन हिन्दी की एक प्रमुख पत्रिका में 'पुरुष-पशु है !' शीर्षक मेरा लेख प्रकाशित हुआ था । वह पत्रिका मेरे सामने ही मेज पर रक्खी थी । मैं उस दिन बड़ी प्रसन्न थी, अपने लेख को मैंने फिर से पढ़ा था और उस पर सम्पादक की टिप्पणी भी मैंने पढ़ी थी । सम्पादक ने मेरे तर्कों को मुक्तकण्ठ से अकाट्य माना था ।

"उस युवक ने मुझे नमस्कार किया और मेरे सामने पड़ी हुई खाली कुर्सी पर बैठ गया । उसने मुझे ध्यान से देखते हुए कहा—'क्या आप ही इस विद्यालय की प्रधानाध्यापिका श्रीमती भुवनेश्वरी देवी हैं ? मैं अपनी मुन्नी को आपके स्कूल में भर्ती कराने आया हूँ ।'

"उस युवक की उपेक्षा करते हुए मैंने साथ वाली लड़की को देखा । बालिका सुन्दरी थी, भोली थी और देखने में समझदार मालूम होती थी । मैंने बालिका से पूछा—'बेटी तुम्हारा नाम क्या है ?'

'कल्याणी'—उस बालिका ने सीधे-सादे ढंग से उत्तर दिया ।

'बड़ा अच्छा नाम है'—कहते हुए मैंने उस युवक की ओर देखा, उस समय वह उस पत्रिका के पन्ने उलट रहा था । मैंने उस लड़की को प्रवेशिका परीक्षा के लिए अन्य अध्यापिकाओं के पास भिजवा दिया । वह युवक वहीं बैठा हुआ पत्रिका पढ़ता रहा ।

"मैंने कई बार उस युवक की ओर देखा; पर वह पत्रिका पढ़ने में व्यस्त था । मैं इन लम्पट पुरुषों को अच्छी तरह जानती थी, वे लोग किसी भी सुन्दरी स्त्री की ओर निर्लज्ज होकर भूखे बाघ की भाँति घूरते हैं; पर उस युवक सो शान्त तथा सुव्यवस्थित देखकर मुझे आश्चर्य ही हुआ ।

"मैं अपना काम-काज करने लग गई । अपना काम समाप्त करके जब मैंने गर्दन उठाई, तो उस युवक को कमरे की छत की ओर देखते पाया । मुझसे न रहा गया , मैंने मुसकराते हुए कहा—'आपने बड़ी जल्दी पत्रिका पढ़ ली !'

वह भी मुसकराया । बोला—'उसमें एक लेख को छोड़कर पढ़ने

लायक कोई लेख न था। वह लेख मैंने पढ़ लिया।'

'वह कौन लेख था?' —मैंने कुछ बनते हुए पूछा, क्योंकि वह किस लेख की ओर संकेत कर रहा है, यह मैं जानती थी।

उसने कुछ हिचकिचाते हुए कहा—'आपका 'पुरुष पशु' है शीर्षक लेख, और साथ ही उस पर सम्पादक की टिप्पणी!'

'आपका उस लेख पर क्या विचार है—?' मैंने कौतूहल से पूछा।

उसने कहा—'आपके लेख के सम्बन्ध में मुझे केवल इतना ही कहना है कि उसमें असत्य नहीं है, केवल अर्ध सत्य है और इस सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि स्त्री में न विश्लेषण की शक्ति है और न सत्य पहचानने की क्षमता। स्त्री में केवल एक चीज है, वह है भावना—और भावना अर्ध सत्य है! मुझे तो उस सम्पादक पर हँसी आती है, जिसने आपकी प्रशंसा करते हुए यह निःसार टिप्पणी लिख डाली।'

उस युवक की बात सुनकर मैं तड़प उठी। मेरे मुँह पर ही वह मेरा अपमान कर रहा था। उसकी असभ्यता पर झल्ला कर मैंने कहा—'आप अपनी बहन को मेरी शिक्षा-दीक्षा में ही छोड़ रहे हैं, मेरे विश्वास तो आप जानते ही हैं। मैं आपको सचेत करती हूँ।'

इस बार वह हँस पड़ा। उसने कहा—'देवी जी! शिक्षा-दीक्षा मनोविज्ञान को नहीं बदल सकती। स्त्री निर्बल है, वह असहाय है। उसे गुलामी करनी ही पड़ेगी, आप उसकी गुलामी छुड़वा कहाँ सकती हैं?...'

"इसी बीच कल्याणी अध्यापिकाओं के पास से होकर आ गई और उस युवक की बात अधूरी ही रह गई। मैंने कल्याणी का नाम लिख लिया। उसके बाद उस युवक ने उठते हुए कहा—'देवीजी! मैं आपको धन्यवाद देता हूँ; पर मेरी बात अधूरी ही रह गई, मैं उसे पूरी कर लूँ। आप स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में गुलामी की बात क्यों उठाती है? गुलामी तो मनुष्य जाति का जन्म-सिद्ध अधिकार है। स्त्री एक पुरुष की गुलामी करने के लिए लालायित क्यों होती है, आप शायद अविवाहित

हैं, आप अपने पति की गुलाम नहीं हैं; पर आप इस स्कूल के अधिकारियों की, जिनकी संख्या एक से कहीं अधिक है; गुलामी कर रही हैं या नहीं ? स्कूल का मैनेजर आपको डाँट सकता है, स्कूल के इंसपेक्टर अथवा इंसपेक्ट्रेस की आप गुलाम हैं, डाइरेक्टर की आप गुलाम हैं। आप जरा पुरुष पर भी तो ध्यान दें। उसके स्वामियों की संख्या कितनी अधिक है, पैसा पैदा करने के लिए उसे कितना अपमानित होना पड़ता है!'—और वह युवक शान्त भाव से मुसकराता हुआ चला गया।

"उस दिन, दिन भर मैं उदास रही। मुझे अपमानित करके वह युवक चला गया —मेरी प्रसन्नता मिट्टी में मिल गई। मेरे लेख पर बधाई देते हुए उस दिन कई पत्र मुझे मिले—पुरुषों के और स्त्रियों के; पर उस युवक ने पराजय की जो भावना मुझे दे दी थी, वह न दूर हुई। उस दिन मैं पढ़ा भी नहीं सकी। उस युवक के दुःसाहस पर, उसके द्वारा अपने अपमान पर दिन भर मैं सोचती रही। मुझमें प्रतिहिंसा की भावना भड़क उठी थी, मेरे होश ठिकाने न थे।

"एक के बाद एक दिन बीतते गये, वह युवक मुझे दिखलाई न दिया। धीरे-धीरे मैं उसे भूलने लगी। पर एक महीने बाद ही उससे मुझे फिर मिलना पड़ा, दूसरी ही परिस्थिति में। उस दिन अपनी एक सहकारिणी के साथ मैं एक जगह आमन्त्रित थी। ग्यारह बजे रात को हम दोनों वहाँ से वापस लौटीं। कोई सवारी न मिली; पर जहाँ हम आमन्त्रित थीं, हमारा विद्यालय वहाँ से दूर न था। बीच में एक पार्क था, उसी से जाना पड़ता था, । रात सुहावनी थी। हम दोनों ने यह तै किया कि पैदल ही चला जाय, और हम दोनों पैदल ही चल पड़ीं।

"हम दोनों पार्क के बीचोबीच फव्वारे के पास से जा रही थीं; वहाँ एक बेंच पर दो आदमी बैठे हुए बातें कर रहे थे। हमें देखते ही दोनों उठ खड़े हुए, और उनको उठते हुए देखते ही मैं घबरा गई। हम दोनों ने भागने का प्रयत्न किया कि वैसे ही एक आदमी ने मुझे और दूसरे ने मेरी सखी को पकड़ लिया। हम दोनों चिल्लाईं, हम दोनों

ने बहुत हाथ-पैर मारे पर उन्होंने हमें न छोड़ा। मुझे मालूम होता था, मानो मेरी सारी शक्ति खो गई, और मैं अपने होश से भी अपना अधिकार खोने वाली थी कि मेरा बन्धन टूट गया और मैंने देखा कि मुझे पकड़ने वाला जमीन पर मुँह के बल पड़ा है और जो आदमी मेरी सखी को पकड़े था वह भागा जा रहा है। साथ ही एक तीसरे व्यक्ति को मैंने वहाँ पर खड़ा पाया।

"बहुत कोमल और गम्भीर स्वर में उस तीसरे व्यक्ति ने हम दोनों से कहा—'मैं आप लोगों के साहस की प्रशंसा करता हूँ, पर मैं इतना कह सकता हूँ कि ग्यारह बजे रात को इस एकान्त पार्क में बिना किसी रक्षक के अकेले आकर आप लोगों ने कोई समझदारी का काम नहीं किया।'

"बिजली के धुँधले प्रकाश में मैं तीसरे व्यक्ति को नहीं देख पाई थी; पर जब मैंने स्वर सुना तब न जाने क्यों मैं एकाएक सिहर उठी। यह वही युवक था। उसने फिर कहा।—'चलिये, विद्यालय तक आप लोगों को पहूचा दूँ; कहीं यह घटना फिर न हो जाय।'

"वह युवक हम दोनों को विद्यालय तक पहुँचा गया। हम दोनों इतनी डरी और सहमी हुई थीं कि उसे धन्यवाद देना भी भूल गईं। उसके जाने के बाद मेरी सखी को होश आया, काँपते हुए स्वर में उसने कहा—'अगर यह आदमी न आ गया होता, तो क्या होता? अरे! हम उसे धन्यवाद देना तक भूल गईं।'

"उस रात मुझे नींद न आई। तरह-तरह की अस्पष्ट तथा विशृंखल भावनाएँ मेरे सामने आती थीं और चली जाती थीं। एक महीना पहले स्कूल में उस युवक से मेरी बात-चीत, पार्क में उन बदमाशों का प्रहार, उस युवक का हम लोगों को बचाना और फिर हम लोगों का उस युवक को धन्यवाद तक न देना!

"दूसरे दिन मैंने अपनी सखी से कहा—'मैं जानती हूँ कि वह युवक, जिसने हमें बचाया था, कौन है। वह कल्याणी नाम की लड़की का भाई है।'—मेरी सखी इस बात को सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई, बोली—

'ऐसी बात है ! तब तो हम दोनों उसे धन्यवाद का एक पत्र लिखकर भेज दें ।'

"न जाने क्यों मेरे हृदय में उस युवक से एक बार फिर मिलने की इच्छा हो गई थी। मैंने अपनी सखी से कहा—'क्या इतने बड़े उपकार का बदला एक रूखा-सा धन्यवाद का पत्र ही उचित होगा ? हम दोनों उसकी दावत क्यों न कर दें ?'

"मेरी सखी ने एक बार मेरी ओर बड़े ध्यान से देखा, फिर उसने मुझसे कहा—'मैं तो तुम्हारी वजह से उसे आमन्त्रित करने में हिचकती थी; क्योंकि मैं पुरुषों के प्रति तुम्हारे उद्‌गार जानती हूँ। इसमें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।'

"उसी दिन मैंने उस युवक के नाम एक पत्र लिखा, उसे धन्यवाद देते हुए तथा दूसरे दिन संध्या के समय भोजन करने के लिए आमंत्रित करते हुए। पत्र मैंने कल्याणी के हाथ भिजवा दिया।

"दूसरे दिन वह युवक आया। इस बार मैंने उसे ध्यान से देखा, उस दृष्टि से, जिस दृष्टि से स्त्री एक पुरुष को देखती है। प्रथम बार मैंने अनुभव किया कि वह रूपवान है, वह बलिष्ठ है, वह प्रतिभाशाली है। प्रथम बार मैंने अनुभव किया कि वह पुरुष है ! और—और प्रथम बार मैं अपने मार्ग से डिगी। मैंने एक धारा का अनुभव किया, जो मुझे बरबस दूसरी ओर बहा ले जाने पर तुली हुई है।

"उस युवक से मेरी मित्रता तेजी के साथ बढ़ी। मैंने न जाने कितना प्रयत्न किया कि मित्रता न बढ़े; पर मैं असफल रही। पहले तो मैं अपने को यह कहकर धोखा देती रही कि यह केवल मित्रता है, इसमें कोई भय नहीं; पर कहाँ तक मैं अपने को धोखा देती ? बिना उसे देखे मुझे चैन न आता था, इच्छा होती थी कि सदा उसका मुख देखती रहूँ—सदा उसकी बातें सुनती रहूँ। और बात यहाँ तक पहुँची कि आज पन्द्रह दिन हुए उसने मुझे से विवाह का प्रस्ताव भी कर दिया।

"नहीं जानती, उस युवक में कौन-सा जादू है कि मैं उसकी बात

पर 'ना' नहीं कर सकती ? मैंने उसका विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। जिस गुलामी का मैं विरोध कर रही थी, जिस गुलामी के विरुद्ध मैंने इतना लिखा-पढ़ा, उसी गुलामी को अपनाने को तैयार हूँ ! उफ ! मेरा कितना भयानक पतन हो गया है !

"अब मेरे सामने प्रश्न यह है कि क्या मैं पराजय स्वीकार करूँ ? उस युवक से विवाह करने का अर्थ है मेरी पराजय। मैं जानती हूँ कि मैं उसका विरोध नहीं कर सकती, कोई भी ज्यादती वह मुझ पर करे, मैं चुपचाप सह लूँगी, बिना उफ़ किये हुए। मैंने उसे आत्मसमर्पण कर दिया है, वह मेरा देवता है, मेरा भगवान है--मेरा सब कुछ है। आज मैं उस भयानक सत्य को देख रही हूँ कि स्त्री पुरुष की गुलामी करने के लिए ही बनाई गई है। मेरे सामने दो मार्ग हैं--पराजय अथवा मृत्यु। इन दोनों में मुझे चुनना है--और मैं मृत्यु चुनती हूँ !

भुवनेश्वरी"

यह पत्र एक घटना का अधूरा बयान है, उस बयान को मैं पूरा कर सकता हूँ और इतना जानते हुए कि इसका उत्तरार्ध आपको अरुचिकर होगा, मैं उसे करूँगा।

उस दिन मैं एक दूसरे नगर से आपरेशन करके लौटा था, और लौटते-लौटते आधी रात हो गई थी। मैं सोने की तैयारी कर रहा था कि किसी ने मुझे जोर से पुकारा--"डाक्टर साहब !"

मैं नीचे पहुँचा। महिला-विद्यालय का चौकीदार खड़ा था। उसका मुख उतरा हुआ था और आँखें डबडबाई हुई थीं। उसने कहा--"बड़ी गुरूजी ने जहर खा लिया, जल्दी चलिये।"

मैं उसी समय चल दिया। बोर्डिंग की लड़कियाँ कमरे को घेरे खड़ी थीं, भीतर भुवनेश्वरी देवी प्रलाप कर रही थीं। किसी को भीतर जाने का साहस न होता था। मैं भीतर गया। उस समय भुवनेश्वरी देवी को कुछ होश था। मुझे देखते ही वे चिल्ला उठीं--"डाक्टर साहब मुझे

बचाइये । मेरे रमेश को बुला दीजिये —मैं नहीं मरना चाहती—नहीं मरना चाहती !"

मैंने जल्दी-जल्दी वमन कराने की पिचकारी निकाली, इस बीच भुवनेश्वरी देवी चिल्लाती रहीं—"रमेश ! रमेश ! दौड़ो—दौड़ो—मौत मुझे घसीटे लिये जा रही है । मैं तुम से विवाह करना चाहती हूँ—रमेश ! कहाँ हो—आओ, रमेश आओ !—रमेश !" और भुवनेश्वरी देवी की दाँती बँध गई ।

मैंने घबरा कर देखा ! और देखा कि भुवनेश्वरी देवी की आँखें निकल पड़ी थीं और सर तकिये से लुढ़क पड़ा था ।

लड़कियाँ और अध्यापिकाएँ एक साथ रो पड़ीं ।

दो बाँके

शायद ही कोई ऐसा अभागा हो जिसने लखनऊ का नाम न सुना हो; और युक्तप्रान्त में ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान में, और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि सारी दुनियाँ में लखनऊ की शोहरत है। लखनऊ के सफेदा आम, लखनऊ के खरबूजे, लखनऊ की रेवड़ियाँ; ये सब ऐसी चीजें हैं जिन्हें लखनऊ से लौटते समय लोग सौगात की तौर पर साथ ले जाया करते हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी चीजें हैं जो साथ नहीं ले जाई जा सकतीं, और उनमें लखनऊ की जिन्दादिली और लखनऊ की नफ़ासत विशेष रूप से आती हैं।

ये तो वे चीजें हैं, जिन्हें देशी और परदेशी सभी जान सकते हैं, पर कुछ ऐसी भ: चीज़ें हैं जिन्हें कुछ लखनऊ वाले तक नहीं जानते और अगर परदेसियों को इनका पता लग जाय, तो समझिये कि उन परदेसियों के भाग खुल गये। इन्हीं विशेष चीज़ों में आते हैं लखनऊ के 'बाँके'।

'बाँके' शब्द हिन्दी का है या उर्दू का, यह विवादग्रस्त विषय हो सकता है, और हिन्दी वालों का कहना है—इन हिन्दी वालों में मैं भी हूँ—कि यह शब्द संस्कृत के 'बंकिम' शब्द से निकला है; पर यह मानना पड़ेगा कि जहाँ 'बंकिम' शब्द में कुछ गम्भीरता है, कभी-कभी कुछ तीखापन झलकने लगता है, वहाँ 'बाँके' शब्द में एक अजीब बाँकापन है। अगर जवान बाँका-तिरछा न हुआ, तो आप निश्चय समझ लें कि उसकी जवानी की कोई सार्थकता नहीं। अगर चितवन बाँकी नहीं, तो आँख का फोड़ लेना अच्छा है; बाँकी अदा और बाँकी झाँकी के बिना

जिन्दगी सूनी हो जाय। मेरे खयाल से अगर दुनिया से बाँका शब्द उठ जाय, तो कुछ दिलचले लोग खुद-कुशी करने पर आमादा हो जायँगे। और इसलिए मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि लखनऊ बाँका शहर है, और इस बाँके शहर में कुछ बाँके रहते हैं, जिनमें गजब का बाँकपन है। यहाँ पर आप लोग शायद झल्ला कर यह पूछेंगे—"म्याँ यह 'बाँके' है क्या बला ? कहते क्यों नहीं ?" और मैं उत्तर दूँगा कि आप में सब्र नहीं, अगर इन बाँकों की एक बाँकी भूमिका नहीं हुई, तो फिर कहानी किस तरह बाँकी हो सकती है !

हाँ, तो लखनऊ शहर में रईस हैं। तवायफें हैं और इन दोनों के साथ शोहदे भी हैं। बकौल लखनऊ वालों के, ये शोहदे ऐसे-वैसे नहीं हैं। ये लखनऊ की नाक हैं ! लखनऊ की सारी बहादुरी के ये ठीकेदार हैं और ये जान ले लेने तथा जान दे देने पर आमादा रहते हैं। अगर लखनऊ से ये शोहदे हटा दिये जायँ, तो लोगों का यह कहना 'अजी लखनऊ तो जनानों का शहर है।' सोलह आने सच्चा उतर जाय।

जनाब, इन्हीं शोहदों के सरगनों को लखनऊ वाले 'बाँके' कहते हैं। शाम के वक्त तहमत पहने हुए और कसरती बदन पर जालीदार बनियाइन पहन कर उसके ऊपर बूटेदार चिकन का कुरता डाटे हुए जब ये निकलते हैं, तब लोग-बाग बड़ी हसरत की निगाहों से उन्हें देखते हैं। उस वक्त इनके पट्टेदार बालों में करीब आध पाव चमेली का तेल पड़ा रहता है, कान में इत्र की अनगिनती फुरहरियाँ खुँसी रहती हैं और एक बेले का गजरा गले में तथा एक हाथ की कलाई पर रहता है। फिर ये अकेले भी नहीं निकलते, इनके साथ शागिर्द-शोहदों का जलूस रहता है, एक-से-एक बोलियाँ बोलते हुए, फबतियाँ कसते हुए और शेखियाँ हाँकते हुए। उन्हें देखने के लिए एक हुजूम उमड़ पड़ता है।

तो उस दिन मुझे अमीनाबाद से नख्खास जाना था। पास में पैसे कम थे; इसलिए जब एक नवाब साहब ने आवाज दी 'नख्खास'—तो मैं उचक कर उनके इक्के पर बैठ गया। यहाँ यह बतला देना बेजा न

होगा कि लखनऊ के इक्के वालों में तीन चौथाई शाही खानदान के हैं, और यही उनकी बदकिस्मती है कि उनका वसीका बन्द या कम कर दिया गया, और उन्हें इक्का हाँकना पड़ रहा है।

इक्का नख्खास की तरफ चला और मैंने मियाँ, इक्के वाले से कहा—"कहिये नवाब साहब ! खाने-पीने भर को तो पैदा कर लेते हैं ?"

इस सवाल का पूछा जाना था कि नवाब साहब के उद्‌गारों के बाँध का टूट पड़ना था। बड़े करुण स्वर में बोले—"क्या बतलाऊँ हुजूर, अपनी क्या हालत है, कह नहीं सकता ! खुदा जो कुछ दिखलायेगा, देखूँगा ! एक दिन थे जब हम लोगों के बुजुर्ग हुकूमत करते थे। ऐशो-आराम की जिन्दगी बसर करते थे ; लेकिन आज हमें—उन्हीं की औलाद को—भूखों मरने की नौबत आ गई। और हुजूर, अब पेशे में कुछ रह नहीं गया। पहले तो ताँगे चले, जी को समझाया-बुझाया, म्याँ, अपनी-अपनी किस्मत ! मैं भी ताँगा ले लूँगा, यह तो वक्त की बात है, मुझे भी फायदा होगा; लेकिन क्या बतलाऊँ हुजूर, हालत दिनोंदिन बिगड़ती ही गई। अब देखिये, मोटरों-पर-मोटरें चल रही हैं। भला बतलाइये हुजूर, जो सुख इक्के की सवारी में है, वह भला ताँगे या मोटर में मिलने का ? ताँगे में पलथी मार कर आराम से बैठ नहीं सकते। जाते उत्तर की तरफ हैं, मुँह दक्खिन की तरफ रहता है। अजी साहब, हिन्दुओं में मुरदा उल्टे सिर ले जाया जाता है, लेकिन ताँगे में लोग जिन्दा ही उल्टे सिर चलते हैं। और जरा गौर फरमाइये ! ये मोटरें शैतान की तरह चलती हैं; जहाँ जाती हैं, वह बला की धूल उड़ाती हैं कि इंसान अन्धा हो जाय। मैं तो कहता हूँ कि बिना जानवर के आप चलने वाली सवारी से दूर ही रहना चाहिए, उसमें शैतान का फेर है।

इक्के वाले नवाब और न जाने क्या-क्या कहते, अगर वे 'या अली !' के नारे से चौंक न उठते।

सामने क्या देखते हैं कि एक आलम उमड़ा पड़ रहा है। इक्का रकाबगंज के पुल के पास पहुँच कर रुक गया।

एक अजीब समाँ था। रकाबगंज के पुल के दोनों तरफ करीब पन्द्रह हजार की भीड़ थी; लेकिन पुल पर एक आदमी नहीं। पुल के एक किनारे करीब पच्चीस शोहदे लाठी लिये हुए खड़े थे, और दूसरे किनारे भी उतने ही। एक खास बात और थी कि पुल के एक सिरे पर सड़क के बीचोबीच एक चारपाई रक्खी थी, और दूसरे सिरे पर भी सड़क के बीचोबीच दूसरी। बीच-बीच में रुक-रुक कर दोनों ओर से 'या अली !' के नारे लगते थे।

मैंने इक्केवाले से पूछा––"क्यों म्याँ, क्या मामला है ?"

म्याँ इक्के वाले ने एक तमाशाई से पूछ कर बतलाया––"हजूर आज दो बाँकों में लड़ाई होने वाली है, उसी लड़ाई को देखने के लिए यह भीड़ इकट्ठी है।"

मैंने फिर पूछा––"यह क्यों ?"

म्याँ इक्के वाले ने जवाब दिया––"हुजूर, पुल के इस पार के शोहदों का सरगना एक बाँका है और उस पार के शोहदों का सरगना दूसरा बाँका। कल इस पार के एक शोहदे से पुल के उस पार के दूसरे शोहदे का कुछ झगड़ा हो गया और उस झगड़े में कुछ मार-पीट हो गई। इस फिसाद पर दोनों बाँकों में कुछ कहा-सुनी हुई और उस कहा-सुनी में ही मैदान बद दिया गया।"

चुप हो कर मैं उधर देखने लगा। एकाएक मैंने पूछा––"लेकिन ये चारपाइयाँ क्यों आई हैं ?"

"अरे हुजूर ! इन बाँकों की लड़ाई कोई ऐसी-वैसी थोड़ी ही होगी; इसमें खून बहेगा और लड़ाई तब तक खत्म न होगी, जब तक एक बाँका खत्म न हो जाय। आज तो एक-आध लाश गिरेगी। ये चारपाइयाँ उन बाँकों की लाश उठाने आई हैं। दोनों बाँके अपनी बीबी-बच्चों से रुखसत लेकर और कर्बला के लिए तैयार हो कर आवेंगे।"

इसी समय दोनों ओर से 'या अली !' की एक बहुत बुलन्द आवाज उठी। मैंने देखा कि पुल के दोनों तरफ हाथ में लाठी लिये हुए दोनों बाँके आ गये। तमाशाइयों में एक सकता-सा छा गया; सब लोग चुप हो गये।

पुल के इस पार वाले बाँके ने कड़क कर दूसरे पार वाले बाँके से कहा—"उस्ताद !"

और दूसरे पार वाले बाँके ने कड़क कर उत्तर दिया—"उस्ताद !"

पुल के इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज खून हो जायगा, खून !"

पुल के उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज लाशें गिर जायँगी, लाशें !"

पुल के इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज कहर हो जायगा, कहर !"

पुल के उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज कयामत बरपा हो जायगी, कयामत !"

चारों ओर एक गहरा सन्नाटा फैला था। लोगों के दिल धड़क रहे थे, भीड़ बढ़ती ही जा रही थी।

पुल के इस पार वाले बाँके ने लाठी का एक हाथ घुमाकर एक कदम बढ़ते हुए कहा—"तो फिर उस्ताद होशियार !"

पुल के इस पार वाले बाँके के शागिर्दों ने गगन-भेदी स्वर में नारा लगाया—"या अली !"

पुल के उस पार वाले बाँके ने भी लाठी का एक हाथ घुमा कर एक कदम बढ़ते हुए कहा, "तो फिर उस्ताद सम्हलना !"

पुल के उस पार वाले बाँके के शागिर्दों ने गगन-भेदी स्वर में नारा लगाया—"या अली !"

दोनों तरफ से दोनों बाँके, कदम-ब-कदम लाठी के हाथ दिखलाते हुए तथा एक दूसरे को ललकारते आगे बढ़ रहे थे, दोनों तरफ के बाँकों के शागिर्द हर कदम पर "या अली !" के नारे लगा रहे थे, और दोनों तरफ़ के तमाशाइयों के हृदय उत्सुकता, कौतूहल तथा इन बाँकों की वीरता के प्रदर्शन के कारण धड़क रहे थे।

पुल के बीचोबीच, एक-दूसरे से दो कदम की दूरी पर दोनों बाँके रुके।